

नेकीराम की चारपाईयां

• जगदीशचन्द्र पाडेय

ज्ञान भारती
4/14 रूप नगर
दिल्ली 110007
द्वारा प्रकाशित
•
संस्करण 1992
•
•
मूल्य 35.00
•
[illegible] प्रिंटर्स
नवीन शाहदरा दिल्ली 32
में मुद्रित

ISBN 81 85744 10-4

पूज्य पिताजी
की
स्मृति मे

क्रम

●●● दूरी

अफ्रीका एवेन्यू के जिस हिस्से पर हरित रहता है उस जगह से निखिल के क्वाटर की दूरी आज भी उतनी ही ह जितनी कि कल या तब, जब तीन साल पहले निखिल को भी यही क्वाटर एलाट हुआ था। वैसे भी जाने क्या अजीब बात थी कि जब से हरित ने होश सभाला, तभी से वह एक बात देखता था कि उसकी और निखिल की रिहाइश के बीच की दूरी कमोवेश एक-सी ही रही है। अलबत्ता उस सवा डेढ साल की बात और थी जब हरित नैनीताल म पढता था निखिल दिल्ली म नौकरी करने लगा था। शायद एसा इसलिए कि धरती के दो स्थाना के बीच की दूरी बिना हिमालयी परिवतन के घटती बढती नही है। हिमालयी परिवतन म ही समुद्र की जगह हिमालय का उभरना सभव है, वस नही। हरित इसी दूरी को देख अब तक कितना खुश रहता था। वह अक्सर सोचा करता था, यदि वह इधर रहता है तो निखिल इसी एवेन्यू के उस हिस्से पर, जहा दिल्ली की रिंग रोड इसे दूसर हिस्सा मे बाटती है। पर आज निकी की एक छोटी-सी बात ने हरित के मन मस्तिष्क को झकझोर डाला। निकी ने तो उसे यह तक अहसास करा दिया कि वह अब तक जिस भ्रम को पाले हुए था, वह बिल्कुल गलत था। निखिल और उसम मीलो और कोसो की दूरी है। तभी तो निकी की बात सुनत-सुनत वह झटके के साथ बालकनी पर आकर खडा हो आया। देखने लगा उसी ओर जिधर देख वह परेशानी के क्षणो मे भी राहत की सास लिया करता था। सामने वाली सडक की पल्ली ओर टाइप वन क्वाटरा के बीच चपरासियो के बच्चे इस समय भी खेल रह थे। अलबत्ता उनके बगलवाला

वह हिस्सा आज सूना पड़ा हुआ था जहां जमाने पहले सात आठ सौ झुग्गियां थीं। परेशानी के क्षणों में वह अक्सर यहीं पर खड़ा हो सामने देखा जा करता था।

हालांकि निकी ने पिता के दिल को दुखाने भर की दृष्टि से वह बात नहीं कही थी। पौने तीन साल का वह अभी इस काबिल हुआ ही कहां था। अभी तो उसका संसार ऐसा संसार था जिसमें अ आ इ ई या ए बी सी डी की ईंटों को जोड़कर आदमी के रहने लायक घर बनाया जा सकता था। उसकी मां ने उसे यही तो बताया था कि आज जिन घरों में तर गुड्डा-गुड़िया रहा करते हैं आनेवाले कल में वैसे ही घरों में तुम रहा करोगे। अजाब का अक्षरों की पहचान जो करानी थी। अलबत्ता खिड़की में दिखती रेलों को देखते देखते वह यह जान चुका था—खिलौने की रेल भी पटरी पर चला करती है। यही तो बात थी कि हरित ने जब उसे रेल पकड़ायी तब उसने वह डिब्बा भी मांगा जिसमें से उसे रेल दी गयी थी। यदि वह इतना ही करता तो हरित यही सोचता, बच्चे ऐसा किया ही करते हैं। उसने तो किया यह कि पहले तो डिब्बे का मुंह धरती की ओर किया ताकि उसमें बचा सामान नीचे गिर जाय पर जब नीचे कुछ नहीं गिरा तो डिब्बे के भीतर हाथ डालते हुए वह बोला, 'पापा रेल पथरी पर चलती है ना। इसकी पथरी।'

भला हरित इसका क्या जवाब देता। वह समझ भी गया था कि निकी ने ऐसा क्यों और किस कारण किया है। धरती में रेल पटरी पर ही तो चला करती है। वह तो पिता था जो निकी की जिद पर सामने ले जाकर उस पटरी पर चलती रेल को दिखा तक चुका था। यह दूसरी बात थी जब पटरी पर चलती रेल को दिखा वह सहम उठा था कि मौका पाकर कहीं यह रेल देखने उधर अकेले न आ जाय। तभी तो तब निकी को उसने सामने चौराहे पर बैठे रहनेवाले बाबा के बारे में अजीबो-गरीब बातें बतायी थीं कि वह ऐसा बाबा है जो बच्चों को पकड़कर भगा ले जाता है, जबकि तथ्य इसके ठीक विपरीत था। वह तो ऐसा बाबा था जिसे इलाके के लोग एक बेहद भले आदमी के रूप में जानते थे। पहले उसने झुग्गियों के बीच एक मंदिर बना रखा था। जबसे सामने की झुग्गियां हटायी गयीं

तब से अपनी मूनिया लिए वह इसी चौराहे पर पड़ा हुआ था। शुरू शुरू में लोगों ने उसे बहुतेरा समझाया—तुम भी, जहाँ झुग्गीवालों को बसाया गया है, वहीं बस लो। वह किसी की मानता ही नहीं था। पता नहीं, इस जगह पर रहकर वह अपनी जीवनसंगिनी की आखिरी यात्रा को याद करता था या उस अफ्रीका एवेन्यू के नाम से ही कोई विशेष प्रेम था या इस एवेन्यू के अफ्रीका एवेन्यू नाम को सार्थक करने के लिए यहाँ रहना वह जरूरी समझता था। वह यहाँ से किसी कीमत पर हटता नहीं था। उसके इसी बैठे रहने से हरित का यह लाभ हुआ कि निकी अब खिड़की से चलती रेल भी तब देखता था जब चौराहे पर बाबा न हो।

पर आज निकी की पटरीवाली बात को सुन हरित अंदर ही-अंदर हिल चुका था। इसलिए नहीं कि वह निकी के लिए पटरीवाली रेल खरीद नहीं सकता था वरन इसलिए कि निकी की पटरी ने उसे पिता की एक बात याद ताजा करा दी थी। एक बार उन्होंने उससे कहा था 'बेटा जिसकी रेल पटरी पर चला करती है उसका ऐसा ही हुआ करता है।' कहा तो तब उसने निखिल को भी वजीफा मिलने की बात पिता को इसलिए सुनायी थी कि उसे शाबाशी मिले। वहाँ उन्होंने उससे वह बात कह डाली जिससे खीजकर उसे कहना पड़ा था—जरा फर्स्ट आकर तो दिखाये। इसी पर उनके पिता ने उससे कहा था 'हरी, तुम इस बात को नहीं समझ सकते कि तीसरी पोजीशन आने पर दो के बदले तीन वजीफे क्या और कैसे दिए जाते हैं। इसीलिए तो कहता हूँ खूब मेहनत किया करो। वैसे फर्स्ट आना अच्छी बात है पर जिंदगी की दौड़ में फर्स्ट आना ही काफी नहीं हुआ करता है। उसके लिए दूसरी जरूरी बातें होती हैं। जिस दिन तुम उन बातों को समझोगे, उसी दिन तुम्हें पता चलेगा निखिल और तुममें कितनी दूरी है। उसकी रेल बेटा पहले ही पटरी पर '

तब से लेकर अब तक हरित इसी दूरी को पाटने में लगा हुआ था। उसकी तो किस्मत ने उसका पूरा साथ नहीं दिया वरना तो उसने निखिल को एक ही झटके में चारों खाने चित कर डाला था। इतने पर भी उसने जितना किया था, उतना भी अपने आप में कम नहीं था। दसवीं तक

आते-आत यदि निखिल के लिए दो ट्यूशन लग चुके थे तो हरित के पास रो-पीटकर फोस की किताबें भरी थी। हा, बुद्धि हरित की अपनी था। संभावित खतरे की कल्पना भर से उसने अपना एसा साथी खोज निकाला जिसके लिए जिद्दवाजी म तीन ट्यूशन लगाय गय थे। हरित न उसी जिद्द-वाजी का फायदा उठाया। सहपाठी नरी की बदौलत उसे अब तीन नोटस मिल आय थे। बदले म वह भी उसे मदद किया करता था। इतना ही उम्र म तथा ग्रामीण परिवेश क कारण वह इस बात को ताड गया था—उसके पिता और नरी के पिता म यदि नजदीकी है तो नरी के पिता का निखिल के परिवार भर से चिढ है।

ऊपर से हरित के स्वभाव की एक और खासियत यह थी कि यदि वह नरी के डीलडोल शरीर का लाभ उठा निखिल को पग-पग पर दबाय रहता था, तो खेला म झगडा हो जाने पर वह निखिल और नरी म बीच-बचाव करके निखिल का भी प्रस न रखा करता था। इस बार म हरित क लिए सबसे लाभप्रद बात यह भी थी कि गाव के बच्चा के खेलन का तप्पड उसी क घर के पास था। इसलिए भी उसका सवम रौब था। फिर पढन म वह बहुत होशियार था। यह उसकी इसी होशियारी का नतीजा था कि मट्रिक का जब रिजल्ट आया तो वह अपन स्कूल म नहीं आसपास क कई स्कूला मे सबसे अधिक नबरा से पास हुआ था। हालाकि निखिल भी फस्ट डिवीजन म पास हुआ। जहा तक नरी की बात थी वह तो हरी की बदौ-लत एसे सेकिड डिवीजन म पास हुआ जिसकी नरी और उसक पिता तक को उम्मीद न थी। हरित के द्वारा नरी को बताय गय गैस का जो असर था। हरित भाप जा चुका था—नरी की की गयी आज की मदद आग काम आयगी। उसके तो पिता की ब्रह्मवृत्ति वाली आमदनी इतनी कम थी कि बी० ए० एम० ए० करना उसके लिए सपना था। ऊपर से उसक पिता पर उसकी विधवा चाची और उसक दो बच्चा की जिम्मेदारी भी थी। वह तो उसकी मा ने जिद्द की वरना तो उसके पिता उस मट्रिक के बाद भी पढाना छुडा नौकरी करान की सोचन लग थ। इसीलिए माता-पिता की बाते सुन उसकी आखें मातवर पर थी।

मातवर की भी अपनी मजबूरी थी। पसा उसक पास था। पसा क

बल पर उसकी ख्वाइश थी कि वह अपने नरी को एम० ए० कराये। नरी से हरित भी एम० ए० करने की बातें सुना करता था। उसकी बातें सुनकर वह ऊपर दिखन वाली दूर्णागिरि पहाडी को देखता-देखता रह जाता था। उसन सुना जो था वहा एक देवी है जो सबकी मनोकामना पूरी करती है। जबकि अब दिन-पर दिन घर की हालत बिगडती चली आयी। इसीलिए कोई और उपाय न देख हरित न मन-ही मन नरी को अपना आधार मान लिया था। उसका यह आधार उस समय काम आया जब इटर म निखिल को फिर पछाडन पर भी हरित के बी० ए० मे दाखिला के लाले पड गये। हालांकि ऐसे क्षणा उसकी चाची न अपन जेवरा की पोटली हरित के पिता के सामन रखकर सबको स्तब्ध कर दिया। पता नही यह उसका हरित के पति प्यार था या यह भी उसकी सूप थी कि आगे चलकर यही उसके अपने बच्चा के काम आयगा। उसके इसी व्यवहार का इतना असर पडा कि हरित क पिता उसे पढन अल्मोडा भेजन के उपाय खाजने लगे। वहा उसकी बुआ जो थी। इन्ही उपायो के बीच उन्होंन बात मातवर से भी की। बस उसस जिक्र करना था कि वह तो फूला नही समाया। वह उनस तुरत बोला "दाज्यू नरी के लिए मैंन नैनीताल म कमरा ता लेना ही है। आपका हरी भी उसके साथ रह लगा। इतना मैं आपके बटे के लिए करू गा। जरूरत पडने पर और देखूगा। कौन जान आपके हरी की बदौलत मेरा नरी भी पढ ले।"

मातवर का यही सुझाव हरित के लिए वरदान साबित हो आया। एक कमरे के कारण नरी की किताबें भी उसे मिल आयी। ऊपर से एक बात और कि हरित भी वहा पढने लगा जहा निखिल पढ रहा था। यह अलग बात थी कि हरित को इतन पर भी यह उम्मीद नही थी कि वह नरी के साथ अधिक रह सकेगा। उसकी कई आदतें उसे पसद नही थी। पर ननीताल पहुचत ही स्थितिया एसी बदली कि नरी बदल आया। दाखिला नेन के दिन दोना को ऐसा लगा, जैसे पूरे क्लास म वे ही दो गवार है। निखिल की वजह से उनका साक्षात्कार निखिल की मौसी के लडके मुकेश से हुआ। उसके पिता बिडला स्कूल मे उच्च अधिकारी थे। इस नाते वह किसी को कुछ समझता ही नही था। पढने म वह होशियार

ता था ही। अंग्रेजी एमी फर्राटेदार जानता था कि नरी और हरित दानो उसका मुह ताकते रह जाते थे। वह बाकई मे नये जमाने का एक समझदार बच्चा था। फिर इस प्रकरण मे इस बात का भी कम महत्त्व नही था कि नरी का अपने पिता की दौलत का नाज था।

इसीलिए अब हरित और नरी की मुकेश से भी प्रतिस्पर्द्धा हो आयी। हालाकि उनके दाखिल के पिना मुकेश कमिस्ट्री म एम० एस-सी० कर रहा था प्रीविएस म था। पर उनकी प्रतिस्पर्द्धा अंग्रेजी के कारण हो आयी। इसीलिए अब नरी और हरित घर पर टूटी फूटी अंग्रेजी बोलने लग तथा आगे-पीछे देखकर नैनीताल की सड़कों पर। बेचारा को खतरा जो रहता था—यदि काई जानकार उनकी नालायकी की अंग्रेजी सुनेगा तो हँसेगा। नैनीताल तो भारत के उन शहरों म एक प्रमुख शहर था जहा के लोग अंग्रेजो के समय म आज से ज्यादे अंग्रेज बन आये थे। इसीलिए बेचारो का काम चलना कठिन हो आया। इसीलिए मजबूरी म वे अब धीरे धीरे अंग्रेजी की किताबें पढने लगे। इस बार म उनके अंग्रेजी के उस टीचर का भी कम असर नही था जो अंग्रेजी पढाते-पढाते अक्सर अस्तित्ववाद की व्याख्या करने लगता था। उसकी पूरी व्याख्याएं तो उनके पल्ले नही पडी उसकी बदौलत वे इतना अवश्य समझ गये कि वे अस्तित्ववादी युग मे जी रहे है। अस्तित्ववादी विचारधारा के अनुसार दूसरो को पीछे धकेलकर आगे बढना पाप नही है। अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए जितना हिम्मत नही हारना और मेहनत करना जरूरी है उतना ही अंग्रेजी का जानना ।

नतीजा यह कि बी० ए० तक पहुचते-पहुचते नरी और हरित ने लाइब्रेरी से अंग्रेजी की ढेरो किताब पढ डाली। इस अध्ययन का उनको लाभ भी हुआ। अब वे भी अंग्रेजी बोलने म हिचकिचाते नही थे। अधिक अध्ययन होने के कारण उनकी नजरो म अंग्रेजो की अंग्रेजी और अपने लोगो की अंग्रेजी म फर्क साफ दिखने लगा। वह इसलिए कि मुकेश अंग्रेजी बोलते समय एसे नाक भौ सिकोडता था जैसे वह अपने गुलामो से बातें कर रहा हो। तभी तो हरित की यह धारणा बन आयी थी कि अंग्रेजी तो खतरनाक नही अलबत्ता अंग्रेजियत खतरनाक है। क्योकि अध्ययन करते-

करन अब वे यह अच्छी तरह जान चुके थे दुनिया म कोई भी भाषा भली-बुरी नही होती। भला-बुरा होता है आदमी—जो अपनी भाषा के जोश म दूसरा की भाषायी धरोहर को जलती आँख मे ऐसे राख देता है जैसे स्पनिश लोगो न दक्षिणी अमरिकी भाषायी धरोहर को आग को सौंपा था। इसीलिए इस तरह के अध्ययन का उन्ह यहा तक लाभ हुआ कि हरित तो अलग, नरी तक बी० ए० म फस्ट डिवीजन मे ऐसा पास हुआ कि नरी के पिता मालवर ने हरित का एम० ए० कराने की पूरी जिम्मदारी ल ली। यह अलग बात थी कि एम० ए० ज्वाइन करने के पाचवे ही महीने जब अचानक निखिल ने पढना छोडा और दिल्ली आकर नौकरी करन लगा तो वे दोना भी नौकरी की सोचन लग।

उधर अब निखिल क साथ-साथ मुकेश की भी नौकरी ट्रावे म लग गयी थी। विश्वविद्यालय के उसन पिछले पचीस वर्षों क रिकार्डों का भी तोडा था। इसमे भी बडी बात उसक पक्ष मे यह थी कि बडे बाप का बेटा तो था ही साथ म एक सीनियर आई० ए० एस० का साला भी था। जबकि हरित और नरी दोना अभी नैनीताल म ही थे। इसीलिए अब उनक लिए वही नैनीताल सूना हो आया था जो कभी उन्हे लुभावना लगता था। अब तो उनक लिए केवल उस सडक का महत्त्व था जो दिल्ली को आती थी। तभी तो अब वे दिल्ली को आनेवाली बस को तरसती निगाहा मे देखते थे। यह दूसरी बात थी कि दिल्ली को आनेवाली सडका न उनके लिए नयी समस्या पैदा कर दी। रही-सही कसर उन्हे मिली इस सूचना न पूरी कर दी कि निखिल की नौकरी टक्निकल असिस्टट की लगी है। उनक लिए अब यह प्रश्न था आखिर स जेन्ट तो उसके भी वही थे जो उन दोना के पास थे। तब उसने ऐसी कौन-सी महारत हासिल की जो उसकी यह नौकरी लगी। बचारा को अभी इस असलियत का पता कहा था कि वे उस समान अवसरा वाल युग म जी रहे ह जिसमे एक बी० ए० इटरव्यू लेता है एक इटरव्यू देता है और तीसरा चपरासी की भी नौकरी को तरसता है। बचार तो अभी उन्ही किताबी अध्ययन म थे जिनके अनुसार सदिया से दिल्ली पहुचन के अब तक नय और नय ही रास्त बनत रहे हैं।

अब वे दोनों भी ऐसा ही एक नया रास्ता खोजने की सोचने लगे। नरी का सुझाव था—सीधे सेवा आयोग से असिस्टेंट ग्रेड की परीक्षाएं पास करके दिल्ली जाया जाय। हरित का सुझाव था—परीक्षा तो असिस्टेंट ग्रेड की भी दी जाय, पर मुख्य जोर आई० ए० एस० परीक्षा पर दिया जाय। उसकी नजरों में सबसे अच्छी नौकरी यही थी वह चाहता था आई० ए० एस० बनकर निखिल को यह जतला दे कि दुनिया में समझदार वे नहीं होते हैं जो दूसरों की पीठ के सहारे से चली बन्दूक के बल पर खड़े हों। समझदार वे होते हैं जो अपना रास्ता खुद बनायें। बेचारे को अभी तक इस बात का भी कहां पता था कि तोड़तोड़ मेहनत करके परीक्षा तो पास की जा सकती है पर आई० ए० एस० परिवार में नहीं होने के कारण इंटरव्यू के उन निर्णायकों की आंखों में धूल नहीं झोंकी जा सकती जिनकी दृष्टि में आज का सारा ब्रह्मांड उनके और उनके रिश्तेदारों पर ही टिका हुआ है। यही तो बात थी कि हरित और नरी दोनों ही आई० ए० एस० की रिटन परीक्षा में पास होते हुए भी आई० ए० एस० नहीं बन सके हों, दोनों अवश्य ही असिस्टेंट ग्रेड में पास हो आये थे।

यह बात अलग थी कि नरी ने असिस्टेंटी ज्वाइन नहीं की। उसके पिता का सपना एम० ए० था। पिता और छोटे बेटे के अरमानों की दूरी की जो बात थी हरित के लिए असिस्टेंट की नौकरी भी कम नहीं थी। एक तो पारिवारिक स्थिति का सवाल दूसरा अब वह इतना तो समझ ही गया था कि ऐसे परिवेश में नौकरी मिलना मामूली नहीं जिसमें नौकरी के लिए तो सैकड़ों बी० ए० एम० ए० मैं, मैं कर रहे हों पर नौकरी नहीं हो ही। फिर इस बारे में एक खास बात यह भी रही कि कई जानकारों ने हरित को यह बताया कि असिस्टेंट की नौकरी के सामने टैक्निकल असिस्टेंट की नौकरी कुछ नहीं है।

इसीलिए वह मारे खुशी के दिल्ली चला आया। यहां आकर उसकी खुशी क्षण प्रतिक्षण बढ़ती ही चली गयी थी। निखिल को मिलता वेतनमान उसके वेतनमान से कम था। काम भी उन दिनों का समान था। और तो और कुलीग की बदौलत किराये पर हरित को जो कमरा मिला उससे निखिल के कमरे की दूरी उनके गांव के घरों से कम थी। हरित यदि शुरू-

शुरु मे सरोजिनी नगर मे होशियार सिंह रोड म रहता था तो निखिल नेताजी नगर रहता था। निखिल के क्वाटर के लिए चपरासिया के छोटे क्वाटरो से जाना पडता था। ऊपर से निखिल के घर के पास अनगिनत इतनी झुग्गिया थी कि निखिल को वहा रहना ऐसा लगता था जैसे वह अफ्रीका के किसी देश म रह रहा है। उसने हरित से ये बातें कई बार कही थी, फिर रही-सही कसर इसलिए पूरी हो आयी कि दिल्ली मे पाव रखने के महीने भर के अदर हरित को यह पता लगा, जिस तरह मे परीक्षा देकर वह असिस्टेंट बना, उसी तरह वह परीक्षा देकर आफिसर भी बन सकता है।

इसीलिए वह दिल्ली आने के ही साथ पूरी तरह से आफिसर ग्रेड की परीक्षा की तैयारी मे जुट गया। उसके लिए अब निखिल को दी पछाड को बनाये रखने का प्रश्न जो खडा हो आया। धीरे-धीरे वह यह भी जान गया था कि असिस्टेंटी से ज्यादा प्रमोशन टकिनकल लाइन म हुआ करती है। नतीजा यह कि अब उसका ससार दफ्तर व अपने कमरे म सिमट आया था। होटल तो वह खाने की ही मजबूरी मे जाता था। हर क्षण हर पल पढता रहता था। शायद उसके भाग्य म पढना ही था। इस बारे मे भाग्य ने भी उसका साथ दिया। पहल तो उसे कमरा ऐसा मिला जिसके मालिक ने उससे दूसरा कमरा ढूढने को नहीं कहा। दूसरे एक बार एक अफसर की बदौलत वह मिनिस्टर के साथ क्या लगा कि उसके मकान की समस्या हमेशा हमेशा के लिए निपट गयी। बल्कि उससे तो यहा तक पूछा गया— वह क्वाटर कहा चाहता है। तभी तो उसे अपना क्वाटर यहा मिला जहा से उसकी दिल्ली की जिंदगी शुरू हुई थी। अलबत्ता जब उसे क्वाटर मिला तब मे आसपास के माहौल म अतर यह हो आया था कि झुग्गिया अब हट गयी थी। झुग्गियो के बदले अब उस जगह पर सरोजिनी नगर और चाणक्य पुरी को जोडने वाला अडर ग्राउड पुल बन आया था। चाणक्यपुरी बडे अफसरा की जो नगरी थी। उस ओर देखकर वह भी अफसर बनने क सपने लिया करता था।

चाणक्यपुरी को उसका यही देखना उसके लिए वरदान साबित हुआ। उसकी खुशी का उस क्षण पारावार नही था जब पिता को अपने अफसर

बनने की सूचना देने का उस सुअवसर मिला। अफसर की सीट पर बैठने वाले दिन वह फूला नहीं समाया था। इसी खुशी में तो उसने पिता को लिखा था, 'पूजनीय पिताजी आज मुझे अपने अंग्रेजी के लेक्चरर की कई बातें याद आ रही हैं। वे अक्सर कहा करते थे, यह ठीक है कि आज के संत्रास में आदमी हर क्षण हर पल यह महसूस करता है जैसे उसका दम अब घुटा तब घुटा। पर यदि वह हिम्मत न हारे तो वह क्या नहीं कर सकता है। मुझे खुशी है कि मैं आज उन्हीं लेक्चरर की बदौलत निखिल से पहले अफसर बन आया हूं। आज मैं आपका और मातवर चाचा का आशीर्वाद चाहता हूं।

पर उसका यही पत्र उनके लिए प्रश्नों का अंबार बन आया। उसे क्या पता था उसके पत्र के उत्तर में उसके पिता ऐसी बात लिखेंगे जिन्हें पढ़कर वह हिल जायगा। उन्होंने लिखा था

"तुम्हारा पत्र पढ़कर अत्यंत खुशी हुई है। मातवर भी खुश है। पर पिता के नाते मैं आज तुमसे एक-दो बातें कहना जरूरी समझता हूं। मैं आज तुम्हें वह बात भी बताना चाहता हूं जिसे मैं अब तक तुमसे छिपाये हुए था। मुझे खतरा जो हो आया है कि तुम निरर्थक के भ्रम पालकर आगे दुखी होओगे। तुम अभी भी आदमी और आदमी के बीच की दूरी को दूरी समझे हुए हो, जबकि यह सत्य नहीं है। धरती में दो तरह की दूरियां हुआ करती हैं। एक वह जो एक स्थान से दूसरे स्थान के बीच की दूरी की तरह दिखायी दे। दूसरी वह जो हो तो अवश्य पर दिखायी न दे। आदमी और आदमी के बीच यही न दिखने वाली दूरी हुआ करती है। आदमी यही पर भूल करता है। वह दिखनेवाली दूरी के भ्रम में यह तक समझता नहीं है कि जिस दौरान वह आगे बढ़े हुए आदमी तक की दूरी को पाटने की कोशिश करता है उस दौरान आगे बढ़ा हुआ आदमी भी तो आगे बढ़ेगा। फिर विकास में तो गति और भी उल्टी हो जाती है। अब तुम्हीं सोचो बस में सफर करने वाले के लिए जो दूरी दिनों की है वही रेल और हवाई जहाज के लिए घंटों और मिनटों की दूरी है या नहीं?

अगर तूने अपने अफसर बनने भर की बात लिखी होती तो बात और थी। तूने जो निखिल की बात लिखी है। वह मेरी समझ में नहीं आती।

उसके दोनों भाई अच्छी नौकरियों पर हैं। माता पिता की भी उस पर और उसके भाइयों पर जिम्मेवारी नहीं है, जबकि तेरी ओर हम आठ मुंह देखने वाले हैं। फिर मैं यह भी समझ नहीं पा रहा हूं कि तू हिम्मत किसे मानता है। अगर तेरे को नरी का साथ या उसकी किताबें और कमरा नहीं मिलता तो क्या तू ऐसा लिखने लायक बन पाता? बेटा, हिम्मत की दौड़ वहां से शुरू होती है जहां जिंदा रहने लायक आदमी के पेट में हो। वहां नहीं, जहां आंत भूख से सिकुड़ रही हो वहां नहीं, जहां बुद्धि तो हो, पर पढ़ने को किताबें नहीं हों। बेटा, मैं आज तेरे से अपने दिल की बातें कह रहा हूं। जिस तरह से आज निखिल की तू बातें कर रहा है इसी तरह मैं भी जमाने पहले निखिल के पिता से टक्कर लेने की सोचता था। यह मेरे इसी सोच का नतीजा था कि पिता और माता की मृत्यु के बाद कोई और उपाय न देख मैं भूखा प्यासा बनारस पहुंचा था। मैंने सुना था गरीब बनारस में पढ़ सकते हैं। मुझे पता नहीं था कि बनारस पढ़कर गरीब वेदपाठी तो बन सकते हैं, पर वह ज्ञानी नहीं जिसे आज की धरती ज्ञानी मानती है। आज का युग वह नहीं है, जिसमें मछुआरिन का बेटा वेदव्यास बना था। आज तो हम उस युग से भी कोसों आगे निकल आये हैं जिसमें द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा को दूध के बदले आटे मिले पानी को दूध समझकर पीना पड़ा था। इतिहास कहता है कि महाभारत का काल भारतीय इतिहास का स्वर्णयुग था। बेटे, इतिहास में स्वर्णयुग ऐसे ही हुआ करते हैं जब राजपुत्रों को युद्ध विद्या सिखाने वाला अपने बेटे के लिए दूध तक खरीद नहीं सकता तो वह स्वर्णयुग कैसा? बेटे, एकलव्य का तो अंगूठा महाभारत में ही कट गया था, मेरे और तेरे सपनों की बात ही और है। हां, बनारस का मुझ पर यह असर अवश्य था कि मैं दूसरों को ब्रह्म का झूठा भय दिखाकर तेरे लिए कापी किताबें बटोर सकता था। पर मैं जब भी ऐसा करने की सोचता तब मेरी आंखों के सामने मेरी मां का वह चेहरा खिंच आता था जो गोबर की डलिया लिये या ठोकर खाकर मरी थी। तब मेरा सोच था कि मेरी मां को उस पत्थर ने मारा था जिससे ठोकर खाकर वह गिरी थी। आज मैं अहसास करता हूं कि मेरी मां पत्थर से ठोकर खाकर नहीं मरी थी। मरी थी इसलिए कि उसने घर पर बचे आटे की

आखिरी राटी तीसरी रात स्वय न खाकर मुझे दी थी। इसलिए बटा, तर पत्र व कारण आज मैं समय नही पा रहा हू कि हिम्मत तरी और मेरी है या उसकी, जिसन तीन राता की भूखी आता के वावजूद गोबर की डलिया मेरे कारण उठायी थी। इसलिए बेटा, दूसरा को ग्रहा का डर दिखान की सोचने के ही क्षण मेरे सामन प्रश्न खडा हो आता था कि यदि एसा डर कोई पडित मेरी मा का दिखाता तो मेरी मा क्या करती? बटा, धरती म ग्रह भी उसी के शात होन है जिसके पास दान करने को होता ह उसक नही जिसके पास देन को कुछ नही एसा की तो पूजा—पत्थर के आग आसू बहाना भर हुआ करती है। इसलिए बेटा, वस तो तेरी मर्जी, पर मेरी तेरे को सलाह है कि ऐसे भ्रमा का पालना छोड, अब तू आगे की बातें सोच। दुनिया अब हमसे कहन लगी है कि अपन और छोटा के पीछे तरी शादी नहीं कर रहा हू ”

सचमुच यही वह पत्र था जिस उसन एक बार नहीं दजनो बार पढा। हर बार वह और भी उलझ जाता था। कई बार तो उसे ऐस लगता था जसे उसके भाई-बहन किताबा के लिए रो रहे ह। कई बार लगता था कि उसके भाई-बहन भूखे पट सो रहे हैं। कई बार लगता था, गाव के लोग आपस म बातें कर रह है—थोडे दिनो की बात है, शादी होत ही थाडे भेजेगा वह इनको एसे पैसे। इसलिए वह घर को अधिक-से-अधिक पैसा भेजता। सोचता रहता चाह उस कुवारा ही रहना पडे पर अपने भाई-बहना को अधिक-से-अधिक पढायगा। उधर अब उसके पिता थे कि सुझाये सारे रिश्ता को उसके द्वारा मना करने मे घबरा आये। उन्ह तो उल्टा उस पर यह शक हो गया कि कही यह रिश्ता से बाहर तो शादी करने की नही सोचे हुए है। इसीलिए अब वे परेशान हो उठे। यह भी उनकी इसी परेशानी का नतीजा था कि उसके खान का बहाना ले उसके पिता उसके पास उसकी चाची को छोड गये। अपनी मा से ज्यादा वह चाची की बातें जो माना करता था।

चाची के इसी आने ने सचमुच ही कमाल का काम कर दिखाया। कहा तो हरित शादी को किसी कीमत पर तैयार नहीं होता था कहा वही चाची मे बोला ‘ अच्छा, यदि तुम मेरी शादी करना ही चाहती हो ता

फ्ला स करा। वह भी ऐसी लडकी से जहा स दहेज मिलने की कोई उम्मीद ही न हो।" जबकि उसकी कार्यालियत दख कई ऐसे उसे अपनी लडकी दना चाहत थे जो उसे सोने से मढ दें। और तो और, मुकेश के जीजा जी न तक अपनी लडकी के लिए उसे सकेत दिया था। उन जसे सीनियर आई०ए०एस० का दामाद बनना भर उसके लिए काफी था। पर तब हा यह आया कि चाची क आन पर कई रिश्तदार आने शुरू हो जाय। एक इतवार उसकी चाची की चचेरी बहन भी उनके यहा आयी, उसके साथ उसकी बिटिया रेखा थी। तब एकाएक उसन रखा को क्या दखा कि उसे तो लगा जसे रेखा उसकी युग युगा से प्रतीक्षा कर रही है। ऊपर से बडी बात यह हो आयी कि उसन नोट किया कि चाची की बहन बीच-बीच म उस तरसती निगाहा से दख रही है। उसे दखत समय अक्सर उनकी पलकें डबडबा आती है, बल्कि इसी बीच एक बार तो यहा तक हो आया कि उसे दखत समय उनकी डब-डबायी पलका स उछलकर एक आसू उनके बायें गाल स लुढकता उनके परल म एसा गिरा कि उसन तो हरित का बचैन ही कर दिया।

उनके जाने पर हरित न चाची स कहा था 'चाची, तुम्हारी बहन बहुत दुखी मालूम हाती है "

"दुखी हो कसे नही? अब तो दो साल पहल इनक माथे का सिंदूर पुछ आया। दूसर, इनकी दो जवान बटिया और दो छाट लडके ह। वह ता पति की जगह इनको नौकरी मिल गयी, वरना ता जान '

'तब ता इनका दुखी हाना स्वाभाविक है।' अब हरित न भी चाची को परखना शुरू किया था। मगर तभी उनकी चाची बीच म ही बाली, "वसे वह जिस मतलब म आयी थी मैं समझती हू। पर अच्छा ही हुआ, बाली कुछ नही। एसी ही रह गयी क्या हमार हरी क लिए "

तभी तो हरित अवाक्-सा चाची को दखता-दखता रह गया था। उसके अनुसार एक विधवा को दूसरी विधवा से हमदर्दी होनी चाहिए थी, जबकि यहा मामला ही अजीब हो आया था। चाची का वाक्य 'ऐसी ही रह गयी है क्या हमारे हरी के लिए' उस बहुत अखरा था। बल्कि चाची क इस वाक्य ने ता उसे उन कई रिश्ता की याद करा दी थी जिनम मुकेश के आई० ए० एस० जीजा की लडकी का रिश्ता तक शामिल था। दूसरी ओर चाची की

बहन की आंख में लुढ़का वह आंसू था जिसने उसे एक तरह से हिला सा दिया था। तभी तो उस क्षण यह स्थिति हो आयी कि हरित का बार-बार चाची की बहन की आंख में लुढ़कता आंसू जहां दिख रहा था, वहीं धीरे धीरे तो उसे यहां तक लगने लगा जैसे स्वयं रुचा उससे कहने लगी हो—तुम वही हो न जो अब तक अपने और निखिल के बीच की दूरी को खत्म करने की बातें किया करते थे। अब दिख रही है न तुम्हें आदमी और आदमी के बीच की दूरी ! मुझ से जीजा या उस जैसे लोग तुम्हें माता और चाची ही नहीं, ऐसी तरक्कियां दिला सकते हैं जिसमें तुम कइयों को निखिल जैसी नौकरियों पर रख सकते हो। मेरी मां तुम्हें आशीर्वाद के अलावा क्या दे सकती है ? मेरी मां के पास देने को ही कुछ होता तो मैं बदसूरत होते हुए भी खूबसूरत मानी जाती, जबकि मैं आज खूबसूरत होते हुए बदसूरत हूं। दुनिया में लड़की और लड़का या आदमी और आदमी के बीच की दूरी सिक्कों के उछाल भर से नापी जाती है बल्कि सिक्कों का इन्हीं उछालों के बल पर तो आदमी युग-युगों से धरती में आये दिन खूबसूरतियों की इंसानी और इंसानियती दूरी को नापता-नापता आ रहा है। बोलो, खूबसूरतियां धरती के हाटों में आये दिन बिकती नहीं हैं ? जहां तक धरती के दिल और दिलों की बात है। धरती के दिलों ने धरती के दूसरे दिलों की धड़कनों को समझने की कभी कोशिश की है, अगर धरती ने दिल धरती के दूसरे दिल को समझने की कोशिश करते तो क्या सती को भरी सभा में अपमानित होकर यज्ञकुंड में कूदना पड़ता ? शादी हो जाने भर से क्या धरती की बिटियाओं के मन में माता पिता की यादें मर जाती हैं। कैसी अजीब है फेरे होने से पहले और फेरे लगने के बाद के बीच के फासले की यह दुनियावी दूरी ? सती का यही गुनाह था न कि वह फेरे लगने के बाद बिना बुलाये पिता के यज्ञ में शरीक हुई थी। उसका यही गुनाह था न कि उसने विभूति वाले को वरण किया था। विभूति वाला कहकर दूसरे को अपमानित करना सरल है पर उस जहर को पीना सरल नहीं जिसने समुद्र-मंथन में निकले नाना रत्नों की खुशी को गमी में बदल डाला था। किसने पिया था समुद्र मंथन में निकला वह जहर जो पूरी धरती को भस्मीभूत करने के लिए काफी था ? उसी ने पीया था न, जिसे दुनिया ने

विभूतिवाला कहकर अपमानित किया था। मिथ्या अस्तित्व की रक्षा स्वयं अमृत पान या अपना-अपना भर का अमृत बाटने में नहीं हुआ करती है। अस्तित्व की रक्षा हुआ करती है दूसरा के लिए जहर पीने में। बोलो क्या मुझे अपनाकर पीओगे तुम जहर ? मैं पार्वती की तरह तपस्या तो नहीं कर सकती, इतना अवश्य विश्वास दिला सकती हूं, यदि तुम मुझे अपनाआग तो और चाह मैं कुछ कर सकूं या नहीं मैं यह कभी नहीं भूल पाऊंगी कि जिस तरह से मेरे भाई-बहन नग्न-अर्द्ध नग्न हैं उसी तरह तुम्हारे भाई-बहन भी

'क्या रे, क्या रेखा पसंद है तुझे ?" इस बार चाची ने हरित की मानसिकता को झकझोरा था। तभी तो पहले तो वह ठगा-ठगा-सा चाची को देखता देखता रह गया था। फिर एक अजीब सी मानसिकता के साथ बोला था, हां चाची ! अगर तुम मेरी शादी करना ही चाहती हो तो

आज निर्की री पटरीवाली बात ने हरित को इन्हीं यादों की याद करा दिया था। उसकी तो इन यादों में वे यादें तक शामिल थीं जब रेखा से फेरे होते समय निखिल मुस्कराया था। स्पष्ट था कि निखिल उससे मक्ता ही मक्ता में कह गया था—आखिर अपनी ही जैसी जगह हो रही है न शादी। मुकुल के जीजा की लड़की से शादी न करने का भी तो अपना प्रभाव था। यह भी इस प्रभाव का असर था कि हरित के बड़े अधिकारियों ने शादी के बाद ही उसे परेशान करना शुरू कर दिया था। वह तो हरित को रेखा ने अपने स्वभाव की रेखाओं में सभाल लिया, वरना तो उसकी गृहस्थी एक तरह से चौपट होने को हो आयी थी। एक तो दफ्तर की परेशानी, दूसरा वह किसी को हाथ फैलाते देखता तो घंटों यही सोचता रह जाता था—आखिर धरती का यह विधान क्या है, जिसके तहत आदि काल से यही सब होता चला आ रहा है ? क्योंकि पिछले पांच छः वर्षों में निखिल न सिर्फ आउट आफ टर्न क्वाटर ले चुका था, वरन् दो प्रमोशन लेकर उसे काफी पीछे छोड़ चुका था। हालांकि अंडर सेक्रेटरी के पैनल में उसका भी नाम था। निखिल के पीछे मुकुल के आई० ए० एस० जीजा जो थे। उनकी बदौलत मुकुल इन दिनों महान वैज्ञानिक बनकर अमेरिका में था। वहीं से तो

उसने फॉरेन मेड पटरीवाली रेल निखिल के बर्थडे के लिए प्रजेंट भेजी थी। उसी को तो देख निक्की ने पटरीवाली रेल की बात हरित से कही थी। बेचारे को क्या पता था कि उसका पिता अंडर सेक्रेटरी बनने की ऐसी प्रतीक्षा कर रहा है, जैसे मिट्टी के तेल या डालडा की लाइनों में लोगों को खड़ा होना पड़ता है। वह तो रेखा नौकरी करती थी वरना तो शायद उनके खाने तक के लाले पड़ सकते थे। हरित के चार भाई इन दिनों कॉलेज में पढ़ रहे थे। ऊपर से हरित को साले और सालियों की भी तो मदद करनी पड़ती थी। हालांकि इस सबके बावजूद वह खुश रहा करता था। उसे विश्वास था कि निखिल को फिर जो पछाड़ेगा। पर निक्की की बात ने आज उसे पूरी तरह हिला दिया था। आज तो उस चौराहेवाले वह बाबा तक राहत नहीं दिला पा रहा था जिसके अर्द्ध नग्न रूप को देख वह अपने को अफ्रीकियों के बीच सा पा राहत की सांस लिया करता था। शायद इसके पीछे सामने की उस रोड का असर था जो उसके क्वाटर के पास से शुरू-सी हो एशिया पालिटक्निक के एक सिरे पर खत्म होती थी। निक्की की बात ने आज उस उस पुरानी याद को भी ताजा करा दिया था जब उसने और उसके गांव के कई लोगों ने निखिल के लिए लायी गयी खिलौना रेल को सबसे पहले देखा था। गांव की एक बुढ़िया ने तो तब उसे ही सचमुच की रेल समझा था। उसने तब भी अवश्य यह सोचा था रेल सी ऐसी ही होगी पर इसकी पटरियां कैसी होंगी? जबकि अब वह सारी बातों को देख और समझ चुका था। क्योंकि कई दिनों से दनिक खर्च बचाकर भी आज पटरीवाली रेल के लायक उसके पास पैसे नहीं थे

चालमारी माड की चुगी चौकी ! इस समय वहा किशोर, उनके पिता व उनके सामान लाने वाले दमदा के अलावा कोई और नही था। होता भी कैसे ? इस समय कुमाऊ रेजीमेंट के सिपाही चालमारी पर फायरिंग का अभ्यास तो कर नही रहे थे, जो वहा आगे बढने वाले हर व्यक्ति व वाहन को बलात वहा रुकना पडता। और न इस समय ऐसा समय था कि आने वालों को लेने व जाने वालों को छोडनेवाले लोग जो लगभग हमेशा ही वहा होते थे, इस समय जमा रहते। इस समय तो चौकी पर चौकीसा

घट की सख्त ड [illegible] बहती दिसबरी ठड से

अपने को बचात [illegible]

पूरा विश्वास ह [illegible]

ट्रक आ सकती [illegible]

कोई आदमी ह [illegible]

आत्मा तो न [illegible]

मरे !

कि यही चिन्ता शायद निर्मल को इसमें भी शर्मा पा रहा था और नाराज न हो जायें। पर रमेश भाई उन्होंने ऐसा कुछ नहीं किया, बल्कि इतना भर कहा, 'मधिया इसमें तो काम नहीं चलेगा। जा नीमा निकालने के लिए छिन चीड़ की गर्पच्चियाँ काट ले आ।"

रमदा एकाएक ही झटके से खाट से उठे तेज कदमों से सड़क के बायें उस ओर चले जिधर दायीं ओर की झाड़ियाँ को अगल बगल चीड़ ही चीड़ के पेड़ थे। शायद तजुर्बेदार मलाह उन्हें जचो थी।

"क्या अभी तो कौन जल्दी है कहने ?" रमदा अब आगे मैंप रहे थे। प्रश्न भरी आशा से किशोर के पिता को देख रहे थे। चादर अब उन्होंने किशोर के ट्रंक के ऊपर रख दी थी। दोनों की खिटखिटाहट अब उनकी थम गयी थी।

मगर किशोर के पिता थे कि उनकी बात का उत्तर देने के बदले तीखी निगाहों से केवल किशोर को देखते थे। शायद उन्हें इस बात की चिंता थी कि यदि अभी रानीखेत से उनकी ही बस आ जाय तो कहीं निकली चादर यहीं छूट न जाय ? किशोर पिता के चेहरे पर उभरते इन विचारों को ताड़ गया, फिर उसने तीखी नजरों से एक बार चादर को देखा, तो अगले ही क्षण देखा रमदा की ओर। वह भी उसे ही देख रहे थे। शायद उनके इन भावों को वह भी ताड़ गये थे। नैसर्गिक भाव विभावों को ताड़ने के लिए विश्वविद्यालयीय डिग्रियों का होना तो आवश्यक नहीं। रमदा बोले, किशोर चादर ट्रंक में रख ले, कहीं '

किशोर ने चादर सम्भाल ली। उसके पिता सतोष की सांस लेते बीड़ी पी रहे थे और देखते रहे रमदा की ओर।

झुटपुटे से अब दिन में बदलना शुरू हो आया था। चौकी के टौल मुहर्रिर भी अब लम्प जला बिस्तर पर लेटे-लेटे रहा था।

बीच की जगह से अंदर सिगरेट पीता वह साफ दिख रहा था। एक बार टौल मुहर्रिर ने भी देखा—बाहर जलती आग व उन तीनों की ओर। फिर उनकी उपेक्षा-सा करता वह सिगरेट की चुस्कियां कुछ ऐसे भरने लगा, जैसे उसने अपने अनुभवों के बल पर अंदाजा लगा लिया था कि आसपास के गांव से कोई, दिल्ली व बरेली जाने वाली साढ़े छः बजे की बस पकड़ने के लालच में जरा जल्दी पहुंच गये होंगे।

किशोर को दिल्ली वाली ही बस पकड़नी थी। अगले दिन उसे दफ्तर पहुंचना था। पहले की जमी बात होती तो रेल में जाकर दूसरे दिन बारह बजे तक वह दफ्तर जा सकता था मगर इस इमरजेंसी में तो नहीं, क्योंकि एक महीने पहले पांच-सात मिनट की ही देर होने पर आधे दिन की वह छुट्टी पर रह चुका था जो कि अब संभव नहीं था क्योंकि इस बार लेट होने पर उसे तीन दिन की छुट्टियों के कटने का खतरा जो था।

भला सोमवार के दिन छुट्टी होने पर दूसरे शनिवार व इतवार की सरकारी छुट्टी के भी कटने के कानून को वह रोक तो नहीं सकता था। इसीलिए तो वह इतनी जल्दी यहां पहुंच गया था। फिर उसके पिता का यह स्वभाव भी तो था तो साढ़े दस बजे की रेल पकड़ने सात बजे ही दिल्ली रेलवे स्टेशन पर खड़े होने पर भी बेहद देरी का एहसास कर उसे डांट रहे थे कि तुम दिल्ली वालों की लापरवाही का तो भगवान ही मालिक। योजनाएं तो बना डालो आने वाले पचासों सालों की। मगर खबर यह नहीं कि दस मील स्टेशन पहुंचने में ही, बस के कारण तीन घंटे लगें या चार। इतने से पहले तो मैं पहले ही। तभी तो वे पांच बजे ही सरोजिनी नगर से चल पड़े थे, जब कि आज वे तीन बजे ही गांव से चले थे। शायद उनका स्टेटिस्टिकल अंदाजा, गांव से चुंगी चौकी के तीन मील ही होने के कारण अनुमानतः एक ही था।

अब किशोर के पिता ने एक और बीड़ी सुलगा ली। इस बार उन्होंने दमदा की ओर बीड़ी नहीं बढ़ायी। शायद उन्हें यह विश्वास था कि उन्हें अभी बीड़ी की जरूरत नहीं है। इतना ही नहीं, वे दमदा की उपेक्षा में करते टौल मुहर्रिर को केवल टकटकी बांधे देख रहे थे। किशोर ने भी देखा उधर को ही ओर। मगर इस पर चौकी के अंदर जलते लैंप ने उसे

पिछली रात की उस लौ की याद करायी, जिसे वह रात भर देखता रहा था। हालांकि पहाड़ी इस धरती पर, किसी भी ऊंची पहाड़ी पर से एसी अनेक नैसर्गिक लौओं को रात में देखा जा सकता था, पर उस लौ का विशेष ही महत्त्व था। एक तो दायित्वों की अपनी सिकुड़न व पिता के दायित्वों के फैलाव के बीच तब किशोर घुटन अनुभव कर रहा था। दूसरा वह तो सारी रात भर जलती रही थी। पता नहीं मगभीर के लग्गा के बीच उस घर में किसी की शादी थी या किसी के उठावनी की मातमी या चीथड़ों व चीथड़ियों के अभाव में इधर महज सुलभ प्राकृत लकड़ियों का वह प्रतिफल था। तब करीब एक बजे उसके मन में भी तो उठे थे ये ही विचार—जिनके कारण उसे यहां कुछ राहत-सी मिली थी। वहीं, उसे याद हो आयी थी उस मौलि लोहार की काली कलूटी अधनंगन सूरत, जिसके बारे में उसने सुना था कि बिस्तर व कपड़ों के अभाव में सारी सर्दियां भर उसके घर सारी रात धूनी ही जली रहती है जिसकी याद के कारण इस बार उसने झटके के साथ आग सेंकते दमदा को देखना भी चाहा पर उसकी आंखें पिता पर टिकी ही रह गयी। इस बार भी उसे ऐसा लगने लगा जैसे उसके दायित्वों की सिकुड़न की भट्ट उसके पिता इस समय भी वैसे पीटने को उतारू हो आये हैं जैसे कल रात

रात तब किशोर व उसके पिता में हो आये वाद विवाद के कारण दमदा ही थे। दमदा उसका सामान चालमारी मोड़ तक पहुंचाने की मजदूरी और पांच रुपये कर्ज मांग रहे थे। ताकि वह चिलिपानी में ठाकुरदत्त की दुकान में आये कटाल के खद्दर को खरीद सकें। पर उसके पिता थे कि उसे खद्दर दिला देने की पूरी जिम्मेदारी लेते हुए बार-बार काम करने के बाद ही देने पर अड़े हुए थे। जब कि दमदा इसके बावजूद कहे जा रहे थे, काका मेरी बात होती तो कोई बात नहीं थी। आप लोगों के फटे-पुराने कपड़े ही पहन लेता। पर अभागी बहन के बच्चों के लिए दो वर्षों से नये कपड़े नहीं बना सका। पुराने कपड़ों से ही काम चलाया। पर अब जीतू बड़ा हो गया है। पता नहीं किसने उससे क्या कह दिया कि पिछले तीन दिन से नये कपड़ों की जिद क्या करने लगा कि पुशली ने तो सुबह से

खाना तक   क्या तुम्हारे भरोसे ही पल रहे हैं। पर कट्रोल के कपडे का क्या पता कि, तुम्हारे गनीखेत से लौटने तक   वैसे भी इसका भरोसा नहीं कि सुबह दुकान खुलने तक वह रह भी पाये या

मगर किशोर के पिता थे कि आज पिघल नहीं रहे थे। हालांकि उनके बारे में यह प्रसिद्ध था कि मौके पर उन्होंने गांव के इलाके भर के हर आदमी की मदद की। अपने पास न होने पर भी दूसरों से लेकर, बिना एक पैसा ब्याज लिये, उन्होंने लोगों का काम किया। पर इस बार दमदा को खद्दर दिलाने का आश्वासन तो वे अवश्य दे रहे थे मगर पैसा नहीं। जो न तो किशोर को ही अच्छा लगा और न उसकी मां को ही। यही तो कारण था कि मां के कहने पर किशोर ने दमदा की ओर जो हाथ क्या बढाये थे कि बस उसके पिता तो उस पर फूट से ही पड़े, किशोर तुमने मेरे जीते जी मुझ से आगे बढ़ने की यह हिम्मत कैसे की?'

'पिता जी   इससे अधिक कुछ कहने की वह हिम्मत नहीं कर पाया। करता भी कैसे? क्योंकि एक तो वह उनके क्रोध से परिचित था। उन्हें पहले तो बड़ी-बड़ी बातों पर भी गुस्सा नहीं आता है और यदि आ जाता है तो फिर वे अपने ही हो जाते हैं। और दूसरा वह जहां क्रोध में लाल-पीले हो आये थे वहीं, बोल ही चले जा रहे थे 'किशोर! अगर तुम्हारे इस दुस्साहस में भलाई वाला अंश नहीं होता तो मैं तुम्हें इस समय [illegible] ही पीट देता जैसे   । तुम अभी बच्चे हो। दुनियादारी का तुम्हें अभी [illegible] भी पता नहीं। और न इस मूर्ख दमुआ को परिस्थिति का पता है। [illegible] पैसे देने का लाभ भी क्या? लाभ इसलिए नहीं कि, [illegible] जैसा कोई अवगुण है बल्कि इसलिए कि ठकुरिया की [illegible] के कपड़े की लाइन में इसका खड़ा होना, गुमानसिंह [illegible] पास वह पैसे रहने देगा? एक तो इसने [illegible] उधार देना है। दूसरा यदि यह [illegible] बरसों का पुराना व रही [illegible] बगल में ही है। किशोर [illegible] पहले एक दिन ठकुरिया, [illegible] और, गुमानिया ने [illegible]

हालांकि इस बात को सुन मुझे इतना सदमा पहुंचा कि इसने वे ही सोलह रुपए गुमानिया में गंवा दिए। बाद में मैंने उससे कहा था कि पचीस-तीस रुपए माहवार इसे जो भी चीज चाहिए दे देना। पहले तो यही दे देगा और यदि न दे सके तो मुझसे ले लेना। पर उसका मुझे जरा भी भरोसा '

तब किशोर व उसकी मां को समझ में आया था कि ये उस पर क्या नहीं पकड़ा रहे थे। वे तो अलग स्वयं दमदा तक समय चुके थे। दमदा को तो तब वे क्षण याद हो आए थे—जब वे उस दिन बेहद उदास से अपने चाव में बैठे यह सोच रहे थे कि अब वह बहन को मुंह किस तरह दिखायेगा। क्योंकि उन सोलह रुपयों में ग्यारह तो उसी के थे। तभी सामने एकाएक किशोर के पिता को आया देख व उनके हाथ में ठीक एक धोती व पांच गज खद्दर देख वे जहां भौचक्के रह गए थे वहीं वे उनके पांवों में गिर पड़े थे। भला गरीब दुनिया में कभी अकेला रहा है।

मगर अब इस समझ का क्या लाभ? अब तो वे किशोर का डांट-फटकारते ही चले आ रहे थे इसकी ओर आठ रुपए बढ़ाने को तो बड़े तैयार हो। एक अपनी बहन के लिए मन पसंद बनियान पंद्रह दिन से नहीं खरीद सके। यह तो बहुत आगे की बात है तुमसे तो अपने ही बच्चों के लिए स्वेटर नहीं बन पाते। पिछले बरस देहली आया तो देखा—तीनों में से एक के भी पास न तो इधर उधर जाने के लिए अच्छे कपड़े थे और न स्वेटर ही। पूरे साढ़े चार सौ खर्च कर बनवा आया था मैं। बस तुम सरकारी दफ्तर में असिस्टेंट हुए। आगे लगे तुम्हारी असिस्टेंटी का। जरा मेरी ओर देखो, तीन भाइयों सहित पांच तुमको, जिसने जितना पढ़ा, पढ़ाया शादियां कर तुम लोगों को आदमी ही नहीं बनवाया बच दानों का जब भी पड़ा रहा है। और एक '

तब मां के बीच-बचाव करने पर ही वह चुप हुए थे। पर चुप होते समय तो वे किशोर व दादियों के सिकुड़न की मद पीटने के बीच यहां तक कह गए तुमसे तो दमुआ ही भला, कम-से-कम अपनी बेसहारा बाल-विधवा बहन व उसके दो बच्चों को पाल तो रहा है। इसके अधपगलेपन के कारण पहले इसकी शादी नहीं हुई। तब बाद में ही इस लड़की देने को

तैयार नहीं था, पर अब उसे कई लड़की देने को तैयार है। मगर वह कि अब तयार नही। कहता है, "बहन व उनके बच्चे। एक तुम हो तुम तो क्या तुम्हारे जमाने के सभी लोग जो पैसों के कारण पिता को पिता, माता को माता तथा बहन को बहन भी मानने को तयार नहीं। अपना पेट तो कुत्ता भी "

तब तब उसका माथा झनझना ही नहीं उठा था, बल्कि उसे तो यहा तक लगने लगा था कि जैसे वह कैशियर से तनखा लेता रहा है पर मकान के किराए, नून-तेल आदि के बिल की कल्पना कर सोचता-सोचता जला जा रहा है *पिछले महीने तो बच्चा के कपड़े व स्वेटर नहीं बना पाया।* इस बार देने वालों को दे या इतना याद आना था कि उसे यहा तक लगने लगा कि उसके पिता व दमदा तो अलग, उनके ही जैसे दुनिया भर के लोग उसकी स्थिति देख खिलखिलाकर एक ओर तो हंस रहे हैं। दूसरी ओर वह स्वय सोच की एक ऐसी स्थिति में पहुच गया है कि जैसे किसी एक महामारी ने उसके हाथ-पाव, नाक-कान मुह आदि सब ही को निष्क्रिय-सा कर दिया है। केवल उसका दिमाग और उसकी आखें ही क्रियाशील हैं। दिल दिल भी ऐसा, जो अन्य अगो की निष्क्रियता से दुखी तो है मगर रो तक नहीं पा रहा है। दिमाग के बीच माता पिता, भाई-बहन आदि सभी की ऐसी तड़फ व छटपटाहट कि उस तड़प व छट-पटाहट की वजह से अर्ध विक्षिप्तता का एहसास तो कर रहा है मगर विवशतावश उस की नकारने के कारण वह अपने स्वय के अस्तित्व के प्रति सब चिंतित है। और आखें जो घने अधेरे के बावजूद अदर बाहर कमर में नटी बहन अचला के चेहरे पर व्यक्त होते घने जा रहे भाव व भला विचारों को साफ देख तो रहा है। मगर उसके चेहरे पर बढ़ते उतरते भावों का अर्थ, अपनी कल्पनाशीलता के बल पर गढ़ रहा है कि वह लगातार यही कही चला जा रही है—भैया, तुम मेरे स्वेटर की चिंता नहीं करना। नमिता, विभा व नीटू के लिए ड्रेस व स्वेटर जरूर बना देना। क्योंकि ड्रेस के अभाव में मैंने अपनी कई सहेलियों का मिटते देखा है। भैया

जब झुटपुटा दिन म वदल आया था। और तो और सुदूर उत्तर की ओर की वर्फीली पहाडिया तक साफ दिखने लगी थी। अब टौल मुहर्रिर ने भी चौकी क दरवाजे आधे खोल दिय थ। मगर न तो अब भी, किशोर क पिता ही उसम कुछ बोल रहे थे और न वह ही। शायद पिछली रात के वाकिये के कारण दोनो कुछ देर और पश्चाताप करना चाहते थे। तभी एकाएक दमदा उठे। हडबडाय से बोले "क्का, यह क्या? जल्दी करो बस

अब देहली वाली ही बस सामने खडी थी। दमदा उसम उसका सामान चढा चुके थे और वे दोनो इस बार की विदाई की आखिरी रस्म अदा करने के बावजूद केवल आखो-ही-आखो म बातें कर रहे थे कुछ-कुछ ऐसे जैसे

●●● डेलीवेजर

उसने घबराते घबराते कमरे में पांव रखा ही था कि हैरान रह गयी। सोलह-सत्रह आदमियों वाले सेक्शन में आज एक भी आदमी नहीं था? उसे संदेह हुआ कि कहीं आज छुट्टी तो नहीं? पर अपने कमरे के खुले होने से उसने अनुमान लगाया—नहीं, ऐसा नहीं यदि ऐसा होता तो दरवाजे खुलते ही नहीं? फिर एकाएक उसे एक खयाल आया—कहीं कोई महान नेता या कोई ऐसा बड़ा आदमी स्वर्ग को प्यारा तो नहीं हो आया, जिसके कारण दफ्तरों के बंद होने का ऐलान मजबूरन आकाशवाणी को करना पड़ा हो? मगर कमरे की एक एक सीट को देखते ही उसे लगा कि यह बात भी गलत है। सेक्शन आफीसर दासगुप्ता का अटैची-केस करीने से रैक पर रखा था। जुनेजा, भवरसिंह आदि कइयों के बैग हमेशा की तरह पड़े थे। लगभग कई मेजों पर खुली-अधखुली फाइलें प्रमाणित कर रही थी कि ऐसी बात जरा भी नहीं! बल्कि ये सब बातें तो मूक भाषा में कुछ ऐसा जतला रही थी, जैसे कमरे के सारे-के-सारे लोग कहीं इधर उधर गये हैं? हां प्रश्न यह था कि ऐसी क्या बात हो आयी जो सेक्शन के लोग एक साथ कैसे, क्या चले गये?

इन्हीं विचारों के बीच एक बार अस्मिता के मन में भी विचार आया कि अपना पर्स सीट पर रख वह स्वयं बाहर चली जाये! देखे—मामला क्या है? किंतु तभी उसे खयाल आया—वह डेलीवेजर है। फिर आज का दिन तो वह कांप उठी। घबराकर होठों ही-होठों में बुदबुदाती सीधे अपनी सीट की ओर जाते-जाते उसने सोचा—उसे वे सब सुविधाएं कहां जो औरों को उपलब्ध हैं!

बड़े कबूतर एक बच्चे कबूतर को उड़ना सिखाते, उसकी रक्षा करने में तत्पर थे। ऐसा उसने शायद इस बार नहीं, अनेक बार देखा था। मगर इस बार के देखने ने उसके मन मस्तिष्क को ही झकझोर डाला।

अब उसके लिए सीट पर बैठा रहना भी कठिन हो गया। सामने दो बड़े कबूतरों और बच्चे कबूतर ने उसे कमरे में अंदर बंद असहाय व बेबस अपने रोहित और भरत की याद ताजा करा दी। वैसे यह बात भी कदापि नहीं थी कि वह अपने दोनों बच्चों को आज ही कमरे में बंद करके आयी थी। ऐसा तो उसे पिछले तीन साल से हर रोज करना पड़ता था। उसकी पलकें डबडबा आयीं। एकाएक उसे ऐसे लगने लगा, जैसे उसकी जिंदगी परिंदों से भी बदतर है। परिंदे जब मर्जी दाना चुगने निकल सकते हैं जब मर्जी लौट आते हैं, जबकि उसे अपने आठ वर्षीय रोहित और पांच वर्षीय भरत को भगवान की रहम पर कमरे में ताला लगा छोड़ना पड़ता है। अड़ोसी-पड़ोसी भी तो तभी काम आते हैं, जबकि उन्हें भरोसा हो कि अगला भी कभी उनके काम आ सकता है। फिर उसका इतना वेतन भी नहीं था जो वह उन्हें उन शिशु-कक्षों में छोड़ सके जहां आज के जमाने में नौकरी-पेशा दंपति बच्चों को छोड़ अपनी-अपनी नौकरियों पर जाया करते हैं। उसका माथा झनझना उठा। पर तभी सामने रखी फाइलें देख उसे कुछ राहत-सी मिली। लगा, जैसे उसकी मेज पर टाईपिंग के लिए रखी फाइल नहीं, बल्कि प्रत्येक फाइल में दाने हैं, जिन्हें चुग चुगकर उसे जमा करना है। इतना सोचना ही था कि उसने बड़े ही जतन से तीन चार फाइलों को उठा लिया। फिर एक दो फाइलों को तो उसने अपने माथे पर चिपका-सा लिया। वह भी कुछ ऐसे जैसे कहना चाहती हो—परमात्मा, तूने मुझसे मेरे माथे का सुहाग भले ही छीन लिया, मगर ।

इसके बाद तो वह बिजली की-सी फुर्ती के साथ एक के बाद एक पत्र टाइप करने लगी। इसी जल्दबाजी में वह पांच पत्रों को टाइप कर गयी—मगर तब तक भी सेक्शन के लोग नहीं लौटे। औरों की अनुपस्थिति की बात किसी और दिन की होती तो शायद उसे थोड़ा बहुत अखरता। पर

आज उसने लिए यही बात सुखद थी। आज सहित न बुखार के कारण उसे दर हो गयी थी। उसे डाक्टर के पास जाना जो पडा था? साना की अनुपस्थिति के कारण ही उसका आज पन्द्रह-बीस मिनट बाद आना छिप गया था। वर्ना तो किसी के भी देर से आने पर, एक-दूसरे पर फब्तियां कसने में माहिर उसके साथी उसे भी छेड़ने में जरा चूकते नहीं, वहीं हाजिरी लगाने वाले बूढे दासगुप्ता की भाडी झल्लाहटें भी उसे सुननी पडती। साना की अनुपस्थिति का फायदा उठा उसने आज पहली बार रजिस्टर में समय भी सवा दस ही भर दिया था। यही बात थी कि अब वह पूरे मनोयोग से टिक टिक टाइप कुछ इस तरह करने लगी, जैसे उसने असल ही अपना की अनुपस्थिति को छिपाने का निश्चय कर डाला हो। जल्दी-जल्दी में वह आठ लेटर और टाइप कर चुकी। अलबत्ता रोहित भरत की याद आने पर वह थोडी कसमसाई थी। फिर अपनी असलियत की याद आने पर वह अपने नये माहौल में पूरी तरह डूब-सी गयी थी। यह बात थी कि वह एक एक कर दस पत्र टाइप कर गयी। हां ग्यारहवां टाइप कर रही थी कि एकाएक सेक्शन के सारे लोग आ धमके? उसे टाइप करते देख सेक्शन आफिसर दासगुप्ता झल्लाये, अरे तुम जरा देखो तो बाहर।'

—आज तो भाई हद हो गयी? सुबह ही-सुबह आई० सी० पी० की नयी बिल्डिंग से छलांग लगाकर एक डेलीवेजर ने आत्महत्या कर ली? जुनेजा का स्वर था।

—बेचारे को उस स्थिति में नौकरी से हटाया गया था, जबकि वह अभागा अपने पहले बच्चे के होने की खुशी भी मना नहीं पाया था। अजीब है यह दुनिया।—यह स्वर रावत का था।

—अब कैसे जीयेगी वह बेचारी अपने तीन दिन के बच्चे को छाती से चिपकाये?—मिस्टर मदान बोले।

—बेचारा सात साल से डेलीवेजर था।—जुनेजा का गला भर-सा आया था।

वैसे भी यह सारा समाचार इतना करुण था कि हृदय करुणा तक को दहला दे? फिर अस्मिता के लिए तो इसने एक नया ही संकेत दे डाला। उसे तीन दिन पहले के वे क्षण याद हो आये जब उसे एकाएक ही उस बड़े

अधिकारी न बुलाया—जिसके बारे में सारे दफ्तर म यह बात प्रचलित थी कि वह महिला कर्मचारियो का अपनी बदनीयती के कारण बुलाया करता है। पहले ता य बाते केवल कुछ को ही मालूम थी। पर आभा वाली घटना ने ता दफ्तर के सभी लोगा का उसकी हरकत से अवगत करा दिया था। उसने जहा उसके खिलाफ लिखकर शिकायत की थी, वही उसन यूनियन का साथ ले पूरे दस पद्रह दिन मेन गेट पर उसके खिलाफ नारे लगवा दिय थे। वह दूसरी बात थी कि बना बनाया कुछ नही। क्योकि एक दूसरे की मददगार अफसरशाही अपने एक साथी का अपमान कैसे सह पाती! हा, आभा वाली घटना का एक मनोवैज्ञानिक असर यह जरूर पडा कि बडे अधिकारी न महिला कर्मचारियो को बुलाना छोड दिया था। मगर वही बुलाना उसके लिए सिरदर्द बन आया। एक तो उसके 'कलीग' आखो के इशारे से अपने आपस म कुछ ऐसे इशारे करने लगे, जैसे कहना चाहते हो कि अब तक यह बडी सच्चरित्र बनी रहती थी देखें अब ! फिर दूसरे उन क्षणो की एक अजीब विडबना यह थी कि वह उन क्षणो मे अपने माथे के सुहाग के पुछने की चौथी वर्षगाठ के कारण जी भरकर रोना चाहती थी। ठीक ऐसे ही क्षणो म उसे बडे अधिकारी के पास अनिच्छा के बावजूद खडा होना पडा था। मजबूरी का नाम ही नौकरी है शायद! तब अफसर ने उसकी सारी स्थिति स जानकारी हासिल की थी। उसे स्थायी करने का आश्वासन दिया था। साथ ही मिलते रहने की सलाह देते समय उसे भूखी अधभूखी नजरो स घूरा था। तब वह अदर ही अदर इतनी अधिक काप उठी थी कि इसके बाद उसे इन दिनो अपने जिगर के टुकडे रोहित और भरत भार-स लगने लगे थे। ठीक ऐसी मन स्थिति के बीच अपने साथी की आत्महत्या वाली बात न उसे दहला दिया था। फिर इस समाचार न तो उसे यह सबक-सा भी दे डाला था कि यदि वह उस बडे अधिकारी स मिलती नही रहेगी तो ।

—अजीब जमाना आ गया है चपरासियो और क्लर्को की तो भरती बद। डेलीवेजरो की दफ्तरो म बाढ?—क्या ये स्वय मे एक एसी की-सी छटपटाहट थी—ऊपर की पोस्टो पर तो कोई पाबदी नही। पाबदी सिर्फ ।

—भाई, सरकारें तो बदलती आयीं मगर इन बेचारों का भाग्य नहीं बदला शायद।—चुहलबाजी में माहिर भवरसिंह बोला। पर इस बार उसके स्वर में अजीब-सी खीज थी—हैं हैं आठ आठ, नौ-नौ साल से डेलीवेजर के डेलीवेजर?

— डेलीवेजर शब्द का शाब्दिक अर्थ तो होता है वे मजदूर जो रोज की मजदूरी रोज वसूल कर जाते हैं—यह स्वर उस भीमदानी का था, जिसे लोग 'अनुवादक महोदय' कहकर चिढ़ाते थे। क्योंकि बेचारा वर्षों में पारिभाषिक शब्दावली रटते रटते अनुवादक नहीं बन पाया था?

—भाया बिनानी भीमदानी साहब मस्टड रोल का शाब्दिक अर्थ क्या होता है? चंडक के स्वर में 'यूनियनपन' था। फिर वह बोला—इसका अर्थ सरसों के तेल निकालने के तरीके से तो नहीं?

—भाई तुम्हारे साथियों के डर से तो निकालने वाले बेचारे आज दफ्तर में भाग गये। मगर अब हाय हाय' के नारों से वह तो जिंदा नहीं हो सकता—भला भवरसिंह अपनी चुहलबाजी की आदत से बाज कहां आता?

—क्या अस्मिता जी, आप भी तो बोलिए कुछ?—सेक्शन ऑफिसर दासगुप्ता के स्वर में कुछ ऐसे भाव थे, जैसे अस्मिता पर अपना प्रभाव जमाने का उचित अवसर इस समय वह गंवाना नहीं चाहता हो—यह तो आपके लिए जातीय मामला है?

मगर अस्मिता बोले तो बोले क्या? वह तो इस बीच अपनी वास्तविक अस्मिता को पहचानने की उधेड़बुन में पूरी तरह खो चुकी थी। वह तो अपनी असलियत बहुत पहले से जानने के कारण उससे जूझने लगी थी। राजीव से कोर्ट मैरिज करने के साथ ही दोनों के ही माता पिता उनसे नाराज हो गये थे। अपने दुर्भाग्य के कारण शादी के सात-आठ साल बाद ही अचानक उसके माथे का सुहाग पुंछ आया था। तब एक दो लोगों ने तो उस पर उसी क्षण से डोरे डालने शुरू कर दिये थे, जब राजीव की अर्थी सज रही थी। फिर वह धीरे धीरे यह भी अच्छी तरह अनुभव करने लगी थी कि अपनी अस्मिता को बचाने के लिए उसे पग-पग पर कितना जूझना पड़ रहा है। बल्कि अब तो पग-पग पर आने वाली कठिनाइयों से तंग आ वह

स्वय एसे माथी को खोज रही थी जो उमके शरीर के दो टुकडा को भी छाती से लगा ले जबकि परिवेश उसे ना निगल जाना चाहता था, मगर उमके बच्चो से हर हद तक परहेज चाहता था।

य ही बाते थी कि उसे मजबूरन ही सही, नौकरी करनी पड रही थी। क्योकि इसके बल पर वह अपने बच्चो के जीवन को सभालने का सपना जहा मजा पा रही थी, वही अपने नये साथी की खोज म वय करत पा रही थी। यह दूसरी बात थी कि जामनगर हाउस के पुराने हटमेंटो से सामने दिखने वाले आई० सी० पी० के नये भवन को देख वह कई बार कसमसा उठती थी। हमेशा केवल यही सोचती—क्या सामने की यह बिल्डिंग उन जसो के लिए ही है जो अच्छे खासे किस्म के पूंजी जमा के फल गोली म लिये पैदा होत ह या उन-जैसो के लिए भी—जिनके बच्चो को पढने की उम्र मे या तो कडकती धूप के बिना पेड की छाया मे ही अपनी मजदूरिन मा को देख सतोष करना पडता है या फिर दो जून पेट भरने के लिए मा-बाप का हाथ जुटाना पडता है। पर आज तो उसे उधर देखने की कल्पना भर से घबराहट हो आ रही थी। सेक्शन के लोग उमे बलात बहम मे घसीटना चाहते थे। मगर वह चुप थी। हा, मन-ही-मन सोच रही थी कि कह—चिंता न करो। बहुत जल्दी अब ऐसा समय आने वाला है, जब प्राइवेट फर्मों म तो होग रेगुलर रोल पर आदमी सरकारी दफ्तरो म नीचे होग सिर्फ डेलीवेजर। क्योकि दिन पर दिन हो रहे विकास के कारण ऊपर वालो के बच्चो की तादाद अब इतनी अधिक हो गयी ह कि उन्हे ही खपाना कठिन हो रहा है। इसीलिए य नयी-नयी स्कीम या तरकीबें चालू की जा रही ह। पर वह फिर भी बोल कुछ भी नही पायी। केवल फटी फटी आखो से देखती रही सेक्शन को। एकाएक उसकी आखे टाइप-राइटर पर चढे डी० ओ० फाम पर सिमट आयी। डी० ओ० फाम पर अशोक चिह्न के नीचे छपे 'सत्यमेव जयते' को देख उसने कुछ राहत की-सी सास ली। तभी एकाएक उसे लगा, जसे उस चिह्न के नीचे लाखो-करोडो लोग श्रद्धानत खडे हैं। उनके अग प्रत्यग म कुछ एसा विश्वास है कि जैसे व सोच रहे हो—जब एक बार इस चिह्न को साक्षी कर हमने

—भाई, सरकारें तो बदलती आयीं मगर इन बेचारों का भाग्य नहीं बदला शायद ।—चुहलबाजी में माहिर भंवरसिंह बोला। पर इस बार उसके स्वर में अजीब-सी चीज थी—हूँ ह आठ आठ नौ-नौ साल से डेलीवेजर के डेलीवेजर!

— डेलीवेजर शब्द का शाब्दिक अर्थ तो होता है वे मजदूर जो रोज की मजदूरी रोज वसूल कर जीते हैं—यह स्वर उस भीमदानी का था, जिसे लोग 'अनुवादक महोदय' कहकर चिढ़ाते थे। क्योंकि बेचारा वर्षों से पारिभाषिक शब्दावली रटते रटते अनुवादक नहीं बन पाया था?

—भाया बिलानी भीमदानी साहब मस्टड रोल का शाब्दिक अर्थ क्या होता है, चड़ोक के स्वर में 'यूनियनपन' था। फिर वह बोला—इसका अर्थ सरसों के तेल निकालने के तरीके से तो नहीं?

—भाई तुम्हारे साथियों के डर से तो निकालने वाले बेचारे आज दफ्तर से भाग गये। मगर अब 'हाय हाय' के नारों से वह तो जिंदा नहीं हो सकता—भला भंवरसिंह अपनी चुहलबाजी की आदत से बाज कहाँ आता?

—क्या अस्मिता जी, आप भी तो बोलिए कुछ?—सेक्शन आफिसर दासगुप्ता के स्वर में कुछ ऐसे भाव थे, जैसे अस्मिता पर अपना प्रभाव जमाने का उचित अवसर इस समय वह गंवाना नहीं चाहता हो—यह तो आपके लिए जातीय मामला है?

मगर अस्मिता बोले तो बोले क्या? वह तो इस बीच अपनी वास्तविक अस्मिता को पहचानने की उधेड़बुन में पूरी तरह खो चुकी थी। वह तो अपनी असलियत बहुत पहले से जानने के कारण उससे जूझने लगी थी। राजीव से कोर्ट मैरिज करने के साथ ही दोनों के ही माता पिता उनसे नाराज हो आये थे अपने दुर्भाग्य के कारण शादी के सात-आठ साल बाद ही अचानक उसके माथे का सुहाग पुछ आया था तब एक दो लोगों ने तो उस पर उसी क्षण से डोरे डालने शुरू कर दिये थे, जब राजीव की अर्थी सज रही थी फिर वह धीरे धीरे यह भी अच्छी तरह अनुभव करने लगी थी कि अपनी अस्मिता को बचाने के लिए उसे पग-पग पर कितना जूझना पड़ रहा है बल्कि अब तो पग-पग पर आने वाली कठिनाइयों से तंग आ वह

स्वय एसे साथी का खोज रही थी जो उसके शरीर के दो टुकडा को भी छाती से लगा ले जबकि परिवेश उसे तो निगल जाना चाहता था, मगर उसके बच्चा से हर हद तक परहज चाहता था।

य ही बात थी कि उसे मजबूरन ही नहीं, नौकरी करनी पड रही थी। क्याकि इसके बल पर वह अपन बच्चा के जीवन को सभालने का सपना जहा सजा पा रही थी, वहीं अपन नय मायो को खाज म धय वरत पा रही थी। यह दूसरी बात थी कि जामनगर हाउस के पुरान हटमेटा से सामन दिखने वाल आई० सी० पी० व नय भवन को देख वह कई बार कसमसा उठती थी। हमेशा केवल यही सोचती—क्या सामन की यह बिल्डिंग उन जैसा के लिए ही है जो अच्छे-खासे किस्म के पूव-जन्मा के फल भोगी म लिय पैदा होते है या उन-जसा के लिए भी—जिनके बच्चा को पढने की उम्र म या तो कडकती धूप के बिना पड की छाया मे ही अपनी मजदूरिन मा को देख सतोष करना पडता है या फिर दो जून पेट भरने के लिए मा-बाप का हाथ जुटाना पडता है। पर आज तो उसे उधर देखने की कल्पना भर से घबराहट हो आ रही थी। सेक्शन के लोग उसे बलात बहस म घसीटना चाहत थे। मगर वह चुप थी। हा, मन-ही-मन सोच रही थी कि कह—चिंता न करो। बहुत जल्दी अब ऐसा समय आन वाला है जब प्राइवट फर्मों म तो क्या रेगुलर रोल पर आदमी सरकारी दफ्तरा म भी हाग सिफ डेलीवेजर। क्याकि दिन पर दिन हो रहे विकास क कारण ऊपर वालो के बच्चा की तादाद अब इतनी अधिक हो गयी है कि उ ह ही खपाना कठिन हो रहा है। इसीलिए य नयी-नयी स्कीम या तरकीबें चालू की जा रही ह। पर वह फिर भी बोल कुछ भी नहीं पायी। केवल फटी-फटी आखो स देखती रही सेक्शन को। एकाएक उसकी आखे टाइपराइटर पर चढे डी० ओ० फाम पर सिमट आयी। डी० ओ० फाम पर अशोक चिह्न के नीचे छप 'सत्यमेव जयते' को देख उसन कुछ राहत की-सी सास ली। तभी एकाएक उसे लगा, जसे उस चिह्न के नीचे लाखो-करोडो लोग श्रद्धानत खडे ह। उनके अग प्रत्यग म कुछ ऐसा विश्वास है कि जसे वे सोच रह हो—जब एक बार इस चिह्न को साक्षी कर हमने

यह प्रतिज्ञा की है कि हम इस धरती पर समता, शोषणहीन तथा समान अवसर वाले समाज की संकल्पना साकार करें ही दम लेंगे तो फिर

—हद है छह दिन के बाद सातवें दिन के पगार के हक वाला फैक्टरी एक्ट तो यहां लागू नहीं हुआ ?—चपरासी अब अपने पूरे 'यूनियनपन' पर उतर आया था—हां, तीन महीने बाद ब्रेक वाला फार्मूला तरकीब यहां भी चल पड़ी

—मजा यह है कि देश में छायी सारी बुराइयों का दोष व्यापारियों के सर मढ़ दिया जाता है ।—धार्मिक विचारों वाले नायर को भी उचित अवसर सा मिल आया—ऊपर से बातें गरीबों की भलाई की ।

पर अस्मिता अब भी मौन थी । अनुभाग की बातों ने उसके रोम-रोम को कंपा दिया था । सेक्शन के लोग अब पूरी तरह से डेलीवेजर और उनकी समस्याओं पर ऐसे बहस कर रहे थे, जैसे पूरी संसद इसी कमरे में सिमट आयी हो । इतना ही नहीं, कई लोग तो आत्महत्या करने वाले की पत्नी और उसके तीन दिन के अभागे बच्चे तक की बात करने लगे थे। मगर अस्मिता केवल गुमसुम-सी बैठी थी । अब तो उसे यह भी याद हो आया था कि आज का दिन तो वह दिन है जबकि थोड़ी देर बाद उसे पिछले कई बारों की तरह प्रशासन विभाग में बुलाया जाता है । वहां खड़े होकर बिना किसी लिखित के उसे लंबी चौड़ी हिदायत भर सुननी है—कल से नियमानुसार दो-तीन दिन के लिए उसकी सर्विस को ब्रेक दिया जा रहा है बिना किसी प्रतिवाद के उसे सरकारी दफ्तर के अंदर आ सकने के अधिकार वाला पास लौटाना है इन हिदायतों की अवहेलना का सीधा अर्थ होगा नौकरी से पूरी तरह निकाला जाना, आदि-आदि । तभी तो वह बातों में शरीक कहां से होती । सहमी-सहमी बीच-बीच में जहां दरवाजे की ओर देखती थी । वहीं उसे बड़े अधिकारी से मिलते रहने की बात याद हो आती थी

शिकायत

दफ्तर स आकर दिग्विजय न अभी जूते भी नही उतारे थे कि उसका राहुल उसके पास आकर खडा हो आया। कभी वह टुकुर टुकुर पिता को देख रहा था तो कभी रसोई म खडी अपनी मा तथा दीदी को। स्पष्ट था वह आज किसी-न किसी की फिर शिकायत करने वाला है। बचारे को अभी इतनी समझ नही हो आयी है कि घर म पाव रखत ही शिकायत नही करत। सबस छोटा जो है। पहले-पहल उसकी शिकायतें यह भर होती थी—आज बडे न आज छोटे ने आज मा न उस नाहक मारा है। पर अब उसकी शिकायत वसी हो आयी हैं जिनके साथ जुडती शिकायतो के कारण घर म अक्सर लबी चौडी कहा-सुनी हो जाती है। दिग्विजय ऐसी ही कहा-सुनियो स तो तग था। फिर आज तो वह एसी कहा-सुनी स बिल्कुल बचना चाहता था। आज उसन फैसला जो कर रखा था—बस महगाई-भत्ते की किश्त के जो पस मिले थ उनम वह बच्चो क एक साथ पैंटें आदि खरीदगा। ताकि कुछ तो घर म शाति रह। इसीलिए उसन राहुल के खडे होन को अनदेखी कर दी। पर रत्ना थी कि तभी एकाएक ही बोल उठी—गह चल इधर आ। अब एक दिन इसकी टाग तोडनी पडेगी। देखो

—इसकी क्या तोडेंगी—तोड उसकी जिसन ।—बडे को रत्ना स चिढ थी।

बचारा राहुल कहा से अपनी बात कहता। घबराकर रसोई क पास बरामदे म खडा हो गया। मगर राहुल क खडे होन तथा घर के वार्तालापो का नतीजा था कि दिग्विजय घबरा उठा। उसे यह अदाजा लगान में जरा भी दर नहीं लगी कि आज जरूर कुछ-न-कुछ मुसीबत का पहाड टूट आया

है। पिछले कई दिनों में ऐसा ही तो हो रहा था। कई बार तो छोटी छोटी सी बात इतनी संगीन हो जाती है कि दिग्विजय का दम ही घुट आता था। वह तो इन दिनों अक्सर यही सोचता था—क्या कभी उसे इस माहौल से मुक्ति भी मिल पायगी ? कल भी तो ऐसा ही हुआ था। वह चाहता था पहले बच्चों के कपड़े बनायें। बच्चे चाहते थे पहले वह अपनी पैंट बनायें। इसीलिए चाहते हुए भी कल कुछ नहीं हो पाया था। हां, सुबह बच्चों के कपड़ों पर फैसला हुआ था। वह भी अब नया मोड़ लेने लगा था। इसीलिए पहले तो वह टालने का सा अभिनय कर सोफे पर बैठा रहा। फिर एकाएक उठ घर की चीजों तथा परिवार के लोगों को देखने लगा।

और तो उस घर में सभी कुछ सामान्य लगा। असामान्य लगा तो केवल रत्नेश। वह घबराया घबराया-सा दादी के पास तख्तपोश पर बैठा था। शायद वह दादी के उस गाने की प्रतिमूर्ति बन आया था जो इन दिनों वह अक्सर गुनगुनाया करती थी। दिग्विजय की मां के इस गाने से चिढ़ थी। खासकर तब जब बर्तन मलते वे कहा करती थीं—करम गति टलै ना टाली, बिना भोगा नहीं जाता... वैसे रत्नेश के हाथ में इस समय किताब थी। पर वह कभी टुकुर टुकुर मां को देख रहा था... कभी उस दादी को जिसने टांगें तोड़नी पड़ेंगी कहा था। उसका चेहरा उतरा हुआ था। जैसे कि वह अपने को पड़ सकने वाली संभावित मार भर से अंदर ही-अंदर कांप रहा हो। इसीलिए दिग्विजय एक भूखे शेर की तरह उसी पर गरजा—क्या तूफान मचाया है रे तूने... मेरे ख्याल से तूने ही...

—उसने क्या मचाया है। वह तो आपने खुद मचा रखा है।—यह उसकी यशोधरा थी—तुम्हीं जो बच्चों को देखते भालते तो मेरे बच्चे ऐसे थोड़े ही बिगड़ते। ऐसे नंबर थोड़े ही उनके आते। इतनी लापरवाही थोड़े ही होती जो कल खरीदी किताब आज ही...

—अच्छा... अब समझा कि हजरत किताब खो आये हैं।—कहते कहते दिग्विजय का खून खौल आया था। क्रोध बेकाबू हो आया। इन दिनों उसे ऐसा ही गुस्सा आता है। गुस्से में वह इतना अंधा हो जाता है कि यदि दूसरा उसे रोके नहीं तो जाने वह क्या कर डाले। फिर आज तो उसने अपनी पैंट खरीदने का विचार छोड़ उसकी किताब खरीदी थी। इसीलिए

उसने आव देखा न ताव दखा एक हाथ में रत्नेश के बाल खींचे। दूसरे से उसे जोर स दो थप्पड जड दिये। इस पर वह जोर से चीखा क्या कि उसने बाना को और भी कसकर उसे हवा म उठा एक परिक्रमा करा डाली। शायद अब वह पिता नही रहा था। पूरी तरह कसाई बन आया था।

—मार डाला मार डालो। कापी किताबें बच्चा का दे नही सकते। —अब यशोधरा अपने को रोक नही पायी—मारो मारा एक इसे क्या हम सबका मार दो। खाने को तो दे नही सकते। मारन को

बस, अब क्या था कि पत्नी की बात सुन उसकी आखा क आग अधेरा छा आया। घबराकर उसने रत्नेश को छोड दिया। अलबत्ता वह पागलो की तरह पत्नी को देखता-दखता भर रहा। वह भी कुछ एसे जैसे उसे स्वय पर तक सदेह हो आया हो—वह सचमुच ही कसाई तो नही ? पिता तो बच्चो का पालन करता है। वह जबकि इस बीच उसकी गिरफ्त म छूटते ही रत्नेश दादी स जा लिपटा। नतीजा यह कि उसने रत्नेश को पुन तो घूरा, पर मा को देखते ही उसके लिए अब मा और रत्नेश को देखते रहना ही कठिन हो आया। झटके के साथ कमरे म आ सोफे म विफर गया। पर तभी उसे लगा जैसे उसके सारे बच्चे उससे शिकायत करने लगे। बडा कहता है—जो बच्चे फस्ट आते है उन्हे दो-दो, तीन-तीन ट्यूशन पढाये जाते है। एक हम है जो रत्ना कहती है—या तो हमारे लिए टेलीविजन लाओ या हमे दूसरा के घर जाने दो राहुल कहता है—पापा मैं कमेटी के स्कूल मे नही जाऊगा। बस वाले मे जाऊगा। इतना तो क्या एकाएक ही उसकी यशोधरा कहने लगी—इनसे कुछ मत कहो। इनकी जैसी तनखा वाला के घर क्या है, क्या नही है ? इनसे कहने का लाभ क्या ? कहा उससे जाता है जो दूसरो की सुने कहा उससे जाता है जिसके पास दिल हो उससे नही, जो पत्थर हो। ये तुम्हारी एक नही सुनेंगे। ये सुनेंगे आज भी उनकी फरियाद जिनकी जिंदगी भर सेवा करवाकर इन्हाने मेरा शरीर मेरे बच्चो के लिए तक, मेरा रहने नही दिया। य तो शुरू म ही गौतम हुए आज के थोडे ही। उसने तो यशोधरा और राहुल को छोडकर सन्यास लिया था य घर पर रहते हुए सन्यासी है। उसने तो सम्यक [illegible] खोजा था य सम्यक नजरो मे हमारा उपकार कर रहे है [illegible]

हमारे आसू दिखते हैं न इनको हमारा रोना सुनायी देता है

—हू, मैं अधा हू—मैं बहरा हू—दिग्विजय आवेशवश बडबडा उठता है। पर तभी अपने आस-पास किसी को न देख वह सहम जाता है। उसके जी मे आता है—भागकर ऐसी जगह चला जाय, जहा दो क्षण चैन की सास ले सके। मगर वह उठता नही है। बैठा-का-बैठा ही रहता है। शायद वह जान चुका था कि उसका नाम दिग्विजय रखते समय उसके पिता ने उसके दिशा जीत लेने की जो कल्पना की थी वह झूठी और थोथी थी। क्योकि दिशाए सिर्फ भाव बोध भर है। उनके स्थूल होने पर तो उनके पार की बात होनी चाहिए। जबकि दिशाओ के परे है कुछ नही। ससार या ब्रह्माड जो कुछ भी है वह सिर्फ दिशाओ के अदर है। अगर यह बात नही होती तो वह बारह वर्ष की उम्र मे पिता की अर्थी को सजती देख चाह कर नही कह पाता—अरे, काल इनके बदले तुम मुझे ले जाओ पिता के जीते जी जब चाचा, ताऊओ ने उन्हे भरे घर से उस कोठे पहुचा डाला जहा गौशाला बनने से पहले गायें बधा करती थी, तो ये चाचा ताऊ पिता की मौत के बाद हम यहा रहने दगे मगर इतने लबे अनुभवों के बाद वह भार्या के सामने खामोश नही रहता। यह अवश्य ही कहता—मैंने तुम्हें पढाते लिखाते समय न दिन देखा न रात मैंने तुमको न उत्तर समझा न दक्षिण और न पूरब न पश्चिम। तुम यह क्या कर रहे हो। कम-से-कम तुम मा के जीते जी तो पूरब-पश्चिम मत बनो। तुम्हे अलग देख ताई चाची खुश नही होगे क्या

—दीदी सौरमडल मे कितने ग्रह होते है।—राहुल दीदी से पूछता है। शायद उसकी कल परीक्षा थी।

—मुझे नही याद—रत्ना के स्वर मे सादगी थी—मा से पूछ। थोडी ही तो देर पहले बताया था उसने सौरमडल मे कितने

—दिखा नही क्या मेरा सौरमडल मे कितने ग्रह है।—यशोधरा खीज उठी थी—यह मेरा ही तो सौरमडल है जो पहले तो स्कूल की पाच दिनो की मार के बाद किताब आयी। फिर जब आयी तो

हालाकि पत्नी की बात सुन उसके जी मे आया कहे—यशोधरा यह तुम्हारा नही मेरा सौरमडल है। क्योकि यदि यह तुम्हारा सौरमडल होता

तो मैं तुमसे कहता। जबकि तुम मुझसे। मगर वह कुछ कह नहीं पाया। उल्टा अतीत की यादों के ऐसी यात्नों या विचारों में उलझ गया जिसमें उसकी आँखों के सामने वे क्षण उभर आये जब पिता की मौत के थोड़े ही दिनों बाद चाची और ताई ने मां को पीटा था। मां को पिटते देख उसने प्रतिज्ञा की थी—वह चाहे कुर्बान हो जाय। मगर एक-न-एक दिन चाची और ताई को यह बतला कर रहेगा—धरती में जिंदा रहने का हक उसकी मां का भी है। बल्कि उस सम्पत्ति पर भी उसका हक है जिसे हड़पने के लिए तुम यह सब कर रहे हो। तब उसकी समझ इतनी ही भर थी कि मां को मां कहकर उसे दिलासा दे। जबकि आज सब अनुभवों के बल वह जान चुका है—यह धरती कोरी भावनाओं की धरती नहीं है यह धरती हानि और लाभ के तराजू की धरती है। यहां आदमी के अपने भी तब तक होते हैं जब उसके पास कुछ हो। कुछ न होने पर तो आदमी के अपने बच्चे तो क्या, वह पत्नी तक उसकी अपनी नहीं होती—जो उसके दुखों की सहभागिनी होती है। बल्कि आज तो आदमी की दुनिया भाई-बहन से हटकर उसका अपना परिवार भर है। चाहे इस टूटन के परिणाम आगे चलकर कुछ-न-कुछ क्या न हो जाये। अगर ऐसा नहीं होता तो जिन भाइयों को पढ़ा लिखाकर उसने चाचा और ताऊओं के बच्चों के बराबर ला खड़ा किया वे उससे अलग होते। बल्कि यह इसी तरह के सोचों का नतीजा था कि एक ओर उसे यशोधरा का वह रूप दिखने लगा जिसमें उसने अपने देवरों और ननदों को अपने जिस्म के लोथड़ों से अधिक समझा था। दूसरी ओर उसी यशोधरा का वह रूप जो अक्सर बच्चों से कहती थी—अब तो तुम्हारी मां को भगवान तुम्हारे आंसुओं को देखने भर को भी रहने दे तो काफी है। कम-से-कम तुम्हें कापी किताबें मांगते देख मैं अपने को यह तसल्ली देती रहूं—मेरे बच्चों की कापी किताबों को मेरे देवर पहले ही पढ़ चुके हैं। उन्हें दुबारा-तिबारा कैसे लायी जाय। धरती में एक बार पढ़ी किताबों को कभी किसी ने दुबारा पढ़ा? अगर ऐसा नहीं होता तो क्या मेरे देवर यह भूलते अपना पेट काटकर उन्हें बड़ा करने वाली भाभी आज प्लूरसी की मरीज है। प्लूरसी के मरीज को दवाओं से ज्यादे खुराक चाहिए होती है। कैसी खिला रहे हैं मुझे खुराक। और तो और अपने पतियों के सामने उनकी

बहुए कहा करती है—वैसे तो जगह जगह कहती फिरती है मेरी तो बच्ची ही बहू हुई क्या नही रहती अपनी बडी के पास

य ही सार स्रोर या बातें थी कि अब उसके लिए सोफे म भी बठा रहना कठिन हो आया। बल्कि धीरे धीरे विचारा के कारण उसकी यह स्थिति हो आयी कि वह इसी क्षण ऐसी जगह चला जाय जहा स फिर लौट ही नही। वह ता मा की याद आत ही वह उठ नही पाया, बठा का बठा रहा। वरना जान वह क्या कर डालता। क्योकि भले ही उससे सबको शिकायतें थी पर मा की उसस कोई शिकायत नही थी। होती भी क्स, भाइया के पढान तथा शादिया क कज वह आज तक चुका रहा था। फिर मा के पास रत्नेश क होन का ध्यान आत ही उसे लगा जसे मा उसस इशारा ही इशारा मे कह रही है—दूसरी किताब सा ला दे अब । बस अब क्या था कि वह अपन को सभाल नही पाया। वह झटक क साथ उठा। ट्र क स बीस का नोट निकाला। मार्केट की ओर चल पडा। पर दो चार ही सीढिया उतर पाया कि उस सुनायी दिया—बटा शायद घर म सब्जी छौकन का भी तल डालडा नही। पाव भर

—उफ।—वह होठा ही-होठा म बुदबुदाया। लौटकर अदर आया। रसोई स डालडा का डिब्बा उठाया। सिर नीचे कर सीढिया उतरन लगा। उसके लिए पत्नी तथा बच्चा को दखना कठिन हो आया। डस तो डिब्बा उठात उठाते यहा तक लगा था जस वे सब उससे कह रह हो हम माफ कर दना। हम तुमको तग करना नही चाहत थ। पर क्या कर हमारा मौर-मडल पाव भर डालडा या तल बन गया है। बस हम यह भी जानत हैं कि पहली तक के लिए तुम जिन चीजा को लाय थे व चार-पाच दिन पहल ही खतम है। पर क्या करें हम मजबूर है। यही वजह थी कि अब उसका गला भर आया। वह अब जितना जितना आग बढ्ता उतना उतना उसका बचारिता उस थामती—आखिर उस बच्च का इस ता नही मारना चाहिए था आखिर जिस तरह म उसन रत्नेश का बस मारा था मारन खाना यह स्वय था या उसकी वह बबसी थी—जो दरजी क बाद हो तनग्वा की बताबी म प्रतीक्षा किया करनी थी आखिर उसका वह हठ किस काम का कि ताऊ-चाचा क लडका का तरह कपडा काट कर

नयी सिलवाये ? जबकि जितने में ऐसी एक पैंट सिलती है उतने में इतवारी बाजार से पाँच पैंट आ जाती है। वह भी उस माहौल में जबकि आज वे लोग तक इन्हें पहनने लगे हैं जो कभी पहले कहा करते थे—कैसे पहनते होंगे लोग दूसरों के पहने कपड़ों को

कल दिग्विजय की पत्नी ने भी तो दिया था ऐसा सुझाव। वह तब अवाक्-सा पत्नी को देखता रह गया था। उसे पहली बार लगा था यशोधरा के कारण अब तक वह जिस गृहस्थी की चूल को अडिग समझता था वह हिलनी शुरू हो आयी है। जबकि आज वह विचारों के ताने-बाने के कारण यशोधरा-सा ही सोचने लगा था। यह दूसरी बात थी कि ऐसे सोचों के बीच उसे यहाँ तक ध्यान नहीं था वह जिस तरह से बाजार में जा रहा था, उसमें वह भले ही बाजारू भीड़ में किसी आदमी से न टकराये। सड़क पर चलती कारों स्कूटरों तथा साइकिलों से टकरा सकता है। उल्टा वैचारिकता के बीच तो उसे यहाँ तक लगने लगा था जैसे सामने की भीड़ में से एक अजीब-सी आकृति उभरकर उससे लगातार कह जा रही है—मियाँ क्या तुम वही आदमी नहीं जिसने कल महँगाई भत्ते की किश्तें लेने में आपस में झगड़ते अपने कुलीगों को देख सोचा था कि उनसे कहे—कितना अच्छा होता यदि आपस में झगड़ने के बदले तुम यह सोचते—यह कौन-सी महँगाई है जिसमें एक की किश्त बारह और सोलह दूसरे की पाँच-पाँच छः छः सौ क्या पाँच पाँच, छः छः सौ पाने वालों के सूचकांकों के लिए कड़ाली मिट्टी का तेल, चीनी, गेहूँ, चावल के बदले कुछ और चीजें होती हैं क्या तुम वही नहीं हो जिसने ऐसा सोचने के बावजूद किश्तें लेने के बाद इस बात पर गर्व का एहसास किया था कि कईयों की तरह तुम्हारे ऐरियर को छीनने साहूकार आस पास नहीं है।

इतना तो अलग रत्नेश की किताब लेते समय तक तो उसकी मानसिकता इस सीमा तक पहुँच आयी कि उसे लगने लगा जैसे कोई उससे कह रहा है—शिकायत करना सरल है, शिकायत का समाधान [illegible] फिर जब शिकायतों का निरा अम्बार भरा हो तब तो और भी असंभव। क्या तुमने कभी सोचा कि महँगाई की जिन किश्तों के लटके रहने से तुम्हें शिकायत थी। वह इसलिए लटकी नहीं रहती थी कि सरकार तुम्हें देना

नही चाहती थी। बल्कि इसलिए लटकती है कि सरकार जान चुकी है एम तो बाबू कोई काम कर नही पाते हैं। इस तरह जमा ऐरियर स कुछ कर डाले। क्योकि जितना जितना वह अपन अगल-बगल खरीददारी करते लोगो को दखता उतनी उतनी उसके मन म एक टीस-सी उठन लगती थी। कपडे की दुकानो की ओर देखने पर तो उसका माथा फटने-सा लगता था। ऊपर से राहुल की माग का दुख अलग। हा, इसके बाद उसकी वैचारिकता एकाएक उस समय टूटी, जब पाव भर तल तुलाकर उसन ती पाच का नोट गल्ल पर बैठे सावनदास की ओर बढाया। उसे उम्मीद थी दूकानदार उस आठ आना लौटायगा। सावनदास था कि उल्टा उसी स एक रुपया मागन लगा। तभी तो उसकी वैचारिकता आक्रोश म बदल आयी थी। वह बोला था—कल परसो तो ओले नही गिरे थे। जेठ म तो सरसो नही होती जो दो-तीन ही दिन म तल अट्ठारह से चौबीस हो आया।

—बाबू लना है तो ले, नही तो लौटा दे।—भला सावनदास दिग्विजय को कहा से पहचानता। वह तो उसे उसी दिन स भूल गया था जब उसने उस फीस माफ कराने की गरीबी का प्रमाण-पत्र दन म मना किया था। वह तो सावन की आखो को देख उसन उसे एक रुपया पकडा दिया वरना वह जाने क्या-क्या कहता। क्योकि उसके लौटत-लौटत भी वह झल्लाया था—करो न शिकायत दरबार मे

भला इस पर दिग्विजय सावन स क्या उलझता। क्योकि अपन सब अनुभवो के बल वह भले ही गौतम नही बन सका था। पर इतना तो जान ही चुका था—धरती का सत्य जहागीर की घटिया नही। बल्कि धरती का सत्य यह है कि पहल तो शिकायतें केवल हवाई फिर यदि कोई बहुत साहस बटोर उन्हे कागजी रूप दे भी तो चाहे शिकायतें सर्वोच्च स क्या न की जायें पर आज उसका भाग्य विधाता वह जिसके ही खिलाफ शिकायत हो। इसीलिए उसन मुडकर सावन की ओर देखा तक नही। हा घर आकर उसने रत्नेश को किताब कुछ ऐसे पकडायी जस अपने अभिनय भर में वह उसस कह गया हो—बेटा, तुम तो मेरा मुह दख शात हो जात हो। मगर मैं किसका मुह दखू

●●● पागल

उसने मार्केट के उस हिस्से में अच्छा खासा तमाशा खड़ा कर रखा था जिधर हमारे राशन की दुकान थी। उधर डी ब्लाक की सड़क को छोड़ कर मार्केट की ओर देखने भर से आभास हो जाता था, निश्चय ही इधर कुछ मारपीट जैसी वारदात हो आयी है। सबसे किनारे की दुकान चक्की थी। उसके पास काफी लोग जमा थे। बाकी सारी मार्केट सुनसान थी। उस सुनसानी के कारण तो कोई यह यकीन नहीं कर सकता था यह क्या सरोजिनी नगर की मार्केट है जिसे दक्षिण दिल्ली की कनाट प्लेस तक इन दिनों कहने लगे थे। यहां हर समय भीड़ रहा करती थी। पर आज छ हिस्सों में बंटी सरोजिनी मार्केट के इस हिस्से में सुनसानी थी। सड़क और दुकानों पर इने गिने ग्राहक थे। उनके भी चेहरों को देख यह अंदाजा लग जाता था कि मामला कुछ संगीन है। फिर भीड़ की आंखें मार्केट और डी ब्लाक की सड़क की ओर टिकी नहीं थीं। टिकी थीं सामने वाले उस पार्क की ओर जिधर बिजली के प्रकाश में अक्सर बच्चे खेला करते थे। चक्की पर खड़े लोग उसके बारे में अजीब-अजीब बातें कर रहे थे। आज वह उधर अकेला था।

पार्क में आज उसका एकछत्र राज्य था। किसी और सांझ की बात होती तो मार्केट के बच्चे उधर टेनिस आदि खेलते दिखते। मगर उधर आज वह अकेला था। उसकी आकृति बेहद भयावनी थी। इससे पहले वह सब्जी मार्केट के सामने वाले नुक्कड़ पर हमेशा गुमसुम बैठा रहता था। वैसे वह चालीस-पैंतालीस की ही उम्र में सत्तर पचहत्तर का बूढ़ा सा हो आया था। वह किसी से मांगता भी कभी कुछ नहीं था। उस पर तरस

खा कोई उस कुछ दे देता तो बात अलग थी। आज चीथड़े-चीथड़े हुआ उसका कुर्ता व पायजामा केवल अपने पूर्वरूप की याद दिला रहे थे। कभी वह एक टांग को ऊपर उठाता, कभी दूसरी टांग के बल छलांगें लगाता मार्कीट के समानांतर चलता रहता कभी दोनों हाथों को सिर से ऊपर उठा अजीबोगरीब तरीके से हिलाता कभी हाथों से दोनों कानों को बंद कर हाइट हाट हुर्र-हुर्र कर चिल्लाता कभी हाथ व पावों के बल जानवरों की तरह चलने लगता यानि कि वह आज अपने बिल्कुल ही नये रूप में था।

बस वह अभी ऐसा कुछ नहीं कर रहा था जिससे लोग आतंकित हो या वहां से भाग खड़े होते या दुकानदार अपनी दुकानें बंद करते। उसने इतना अवश्य कर डाला था कि मार्कीट के इस हिस्से की ओर केवल वे लोग आगे बढ़ते थे जिनके लिए इधर आना मजबूरी थी। यह दूसरी बात थी कि इस हिस्से में आने वाले हर व्यक्ति का सिर्फ यही प्रयास होता कि जितनी जल्दी हो सके अपने को निबटा वह मार्कीट के अन्य हिस्सों की ओर चले जायें। बाकी मजबूरी वाले लोगों के अलावा अन्य उसकी हरकतें देख मार्कीट का लंबा चक्कर सा काट लौट पड़ते थे। बस एच आकार में होने के कारण दूसरे हिस्सों में आसानी से जाया जा सकता था। क्योंकि मार्कीट के बीचोंबीच से भी इधर उधर जाने के रास्ते यहां थे।

पर मेरे लिए इसी हिस्से की ओर जाना मजबूरी थी। एक तो राशन लेना था। दूसरा मैं इस हिस्से में उस दुकान को जानना चाहता था जिसके साथ इस पागल का संबंध लोग बता रहे थे। वैसे मैं सरोजिनी नगर के उन पुराने बाशिंदों में से था जिन्होंने इस मार्कीट को बसते देखा है। पर लाख प्रयास करने पर भी मुझे यह याद नहीं आ रहा था जब इस आदमी को कभी मैंने इधर की किसी दुकान पर मालिक या नौकर की हैसियत से देखा था। जबकि मैं इस मार्कीट के हर दुकानदार को सूरत शक्ल से तक जानता हूं। बल्कि यहां तक जानता हूं कि इनमें से कितनों की दुकानें आस पास के अन्य नगरों में भी हैं। लोगों की बातों पर एकदम अविश्वास भी नहीं किया जा सकता था। लोग इधर आने वाले हर नये व्यक्ति को यह बता रहे थे कि इसके बारे में ये बातें इधर के एक सब्जीवाले/सरदार ने बतायी हैं। इसकी

मा के मरते ही इसकी सौतली मा तथा इसके सौतेले भाइयो ने इससे दुकान छीन ली इसे मार मार कर घर से निकाल डाला तब यह तरह वर्ष का था। मा के मरते ही यह एक बार फिर रिफ्यूजी आ बना पहल-पहल रिफ्यूजी बनने म इसे सरकार ने तथा नगरपालिका आदि ने मदद की थी पर इस बार इसे कौन मदद करता मगर यह हिम्मत हारने वाला आदमी नही था। धीरे धीरे इसने खिलौने बनाना सीखा दो चार साल बाद तो यह रावण बनाने का ठेका लेने लगा देखते-देखते इसने अपनी बहन की शादी कर दी और फिर यह इसी मार्केट म आकर रहने लगा। इसी तरह खिलौने आदि बना यह अपना दरगुजर किया करता था ।

अब उसने और भी भयानक रुख अख्तियार कर लिया था। बार बार वह पार्क के काटों वाले फेंस को लाघने का प्रयत्न करता। अपनी पूरी ताकत से काटेदार तारों को दबाता। यह अलग बात थी फेंस पार कर सकने म वह सफल नही हुआ। अपनी असफलता देख अब वह उस गेट से कुछ बाहर आता जो कि उस पार्क म जाने का एकमात्र रास्ता था। फिर अदर पार्क म चला जाता। अब उसके हाथ म पत्थर था। धीरे-धीरे ऐसा करने के बाद वह पुन हू हा करते पार्क म ही चक्कर काटने लगता। इस कारण अब मार्केट के इस हिस्से म इक्के-दुक्के लोगो का आना भी लगभग बद हो गया था। और तो और अब इस ओर के दूकानदार तथा ग्राहक भी घबरा आये थे। ऐसा स्वाभाविक भी था। दूकानदार और ग्राहक घबराये से दुकानो के अदर सिमट आये थे। अलबत्ता इस मौके का फायदा उठाता एक बछडा ऐसा था जिस पर उसका जरा भी असर नहा था। वह इधर की एक मात्र चक्की के सामने उस जगह अपनी धुन म था जहा कभी गहू साफ करने वाली बैठा करती थी। शायद उधर वह कूडे म गहू के दाने बीन रहा था। वह भी कुछ ऐसे जैसे कि उस जीवन म पहली बार मुहमागी वस्तु मिल आयी हो।

किसी और समय की बात होती तो कोई न-कोई बछडे को मार मार कर भगा देता। बडे नही तो बच्चे कम-से-कम उसे छोडते नही। पर इस बार उसकी वजह से उसकी ओर किसी का ध्यान नही था। अब मेरा

ध्यान पूरी तरह उस पर केंद्रित हो आया था। मुझे उसका उठ खाना भला लग रहा था। बल्कि उसके निर्भीकपन ने तो मुझमें तक साहस भर दिया। उसी की वजह से अब मैं अपनी राशन की दुकान की ओर बढ रहा था। अभी पाच-सात ही दुकानें पार कर आगे बढा था कि मैंने पाया—सभी दूकानदार भूखी भूखी नजरों से मुझे देख रहे हैं। वह भी कुछ ऐसे जैसे मैं अकेला ग्राहक ही सही, पर ऐसा ग्राहक हू जो उनकी आधी दुकान के सामान को खरीदने निकला हू। यह बात दूसरी थी कि जैसे ही मैं एक दुकान से आगे बढता उस दुकान के दूकानदार के चेहरे पर मातमी काली स्याह लकीरें पड आती। वह फिर घूर घूर कर पागल की ओर देखने लगता। उनके चेहरों पर ऐसे भाव उभर आते जैसे उनका यदि बस चलता तो वे पागल की बोटी-बोटी उडा देते। इतना तो क्या, उनकी आखो से ऐसा लगता था जैसे वे आखो-ही आखो से कहना चाहते हो—ठीक मौके पर यह कबख्त कहा से आ फसा। इसने तो दशहरे के त्यौहारी दिनो के पहले इतवार को उनकी रोजी रोटी तक छीन डाली है। इस दिन का तो वे महीनो से इतजार कर रहे थे। आज के दिन तो हम बहुत बडी बिक्री की उम्मीद कर रहे थे। मुश्किल से एक तुम हिम्मत कर आये और तुम भी आगे खिसक गये। कुछ तो हमारा खयाल करो—

बस इधर के दूकानदारो का ऐसा सोचना जायज था। आसपास नयी बस्तियो के फैलाव के बावजूद दूसरी मार्केटों में अभी सारा सामान नहीं मिलता था। फिर इस मार्केट को नयी दिल्ली की व्यवस्था ने चमका भी रखा था। यहा सभी जरूरी सामान मिल जाता था। इसीलिए यहा दूर दूर से लोग खरीददारी करने आते थे। इस मार्केट को देखकर तो ऐसा लगता था कि इस मार्केट को बनाने वाले ने आने वाले हिन्दुस्तान की तरक्की का पूरा अदाजा लगा लिया था। पहली के बाद के इतवार के दिन तो इधर का लुत्फ ही कुछ और होता था। ग्राहक माल के बारे में पूछते-पूछते तग आ जाता था। दूकानदार की यह स्थिति होती थी कि एक हो तो उत्तर दे, सबको एक साथ कैसे उत्तर दें? भला ऐसी बिक्री वाले दिन दूकानदार खीजते नही तो और क्या करते? मगर मजबूरी थी कि किया कुछ नही जा सकता था।

उधर वह अब पार्क के अंदर ता अलग, इस हिस्से की सडक पर बीच-बीच म आ उछल-कूद करने लगा था। इतना तो अलग उसने एक वार सडक के किनारे पडी चारपाइया तथा कूड-कबाड का कुछ एस धक्का दिया जसे वह वहा कुछ खास चीज खोज रहा हो। पता नही वह बदला लेने को कुछ खोज रहा था या उधर उसकी काई खास चीज थी। इधर अब दुकानदार थे कि उसे एसा करते देख अपनी अपनी दुकाना के आगे बरामदे मे खडे हो आये थे। वह भी लगभग एसे जैसे उन सबने यह निश्चय कर लिया हो—यदि उसने इससे आगे खुराफात की तो वे एक साथ उस पर पिल पडेंगे।

मैं भी अब अपनी राशन की दुकान के बरामदे म खडा था। उसकी हरकतें देख घबरा आया था। जी चाहता था बिना राशन लिये लौट पडू। मगर मेरी मजबूरी थी। एक तो मेरी पर्ची कट रही थी। दूसरा अदर गल्ले पर बैठे लगभग पचासी साल के बूढे दुकानदार को देख मुझे उसके बारे म जानने का लालच हो आया था। पर मैं अभी उस तक पहुच भी नही पाया था कि लगा बूढा बडबडा रहा है। दूरी के कारण उसकी बात मैं सुन नही पाया। इसीलिए और भी चौकन्ना हो बूढे के पास खडा हो गया। वह फिर भी धीरे से गुनगुनाया। बहुत जोर देने पर ही इस बार मैं केवल सुन पाया—माया महा ठगिनी । बस, इसके बाद पता नही वह भी मेरे मनोभावो को ताड गया या क्या बात थी। मुझे अपनी और बातें देख मुझे सबोधित करते हाथ जोडते बोला—बेटा, जैसी इसकी हालत हो आयी है वसी भगवान किसी की न करे। कहा दस पद्रह लाख का आदमी। कहा लाखो की चपत ता बेचारा सह गया। मगर औरत और बिटिया की मौत

—बाबा क्या यह इधर की किसी दुकान का मालिक था ? अनायास ही मेरे मुह से निकला था। हालांकि उसकी बात सुन मेरा माथा झनझना आया था।

—हा बेटा कहते-कहते बाबा ने एक गहरी उसास भरी थी। एक बार छत की ओर देखा। फिर भर्राये भर्राये स्वर म बोला—यह दाये हाथ की ओर उसी दुकान का मालिक था जिस पर मोटे मोटे अक्षरा म

आज लिखा है—ईमान की कमाई म ही ताकत होती है।

मैं जब अवाक सा बाना को देखता भर रह गया था। उसके सवत की दुकान को पहचानन की कोशिश कर ही रहा था कि पीछे भिड भिड की आवाज सुन चौक पडा। झटके के माय बरामदे के बाहर ही पहुचा था कि दखा—पहले तो वगत की दुकान पर खडे स्कूटर को उसे गिरात दख एक आदमी ने उसकी पीठ म भद्द स एक लटठ दे मारा। फिर वह अभी सभलता या न सभलता तीन चार आदमिया न उसे धर-दबाचकर जमीन मे गिरा दिया। जबकि अब वह एक आर जोर जोर से "मार दिया मार दिया' चिल्ला रहा था। दूसरी ओर बछिया थी कि अपनी दुम पीछे की दो टागा म दबाय पागल की ओर बढती भीड का चीरत आदमिया के घेर म बाहर निकल रही थी। इमी के साथ कुछ लोग थ कि उस मारत लागा मे कह रह थे—ज्यादे मत मारो कही यह मर न जाय। पर अधिकाश लाग थे कि उसकी पीठ और टागा पर खडे लागा का सहानुभूति से एसे देख रहे थे जसे कि उसे मारन वालो न रावण से भी अधिक खतरनाक आदमी को परास्त कर कोई बडा काम कर डाला हो

●●● मैं, मेरी दराज और चूहे

मैंने जब पहली बार दफ्तर में अपनी सीट के नीचे चूहा देखा तो मेरे आश्चर्य का ठिकाना ही नहीं रहा। आश्चर्य इसलिए नहीं हुआ कि चूहा दफ्तर की बिल्डिंग के हर दरवाजे पर खड़े होमगार्डों की नजर बचा, अंदर कैसे घुस आया। क्योंकि बेचारा होमगार्ड तो केवल सरकारी कर्मचारियों के पासों को चैक कर सकता है, दूसरों की आंखों में धूल झोंकने की विद्या में निपुण चोर उचक्कों का भी वह नहीं पकड़ सकता। फिर इन उचक्के चूहों पर उसका क्या बस जो दीवारों और धरती को अंदर ही-अंदर कुरेद कहां से कहां पहुंच जाते हैं। मेरे तो आश्चर्य का विषय था—ये कमबख्त दफ्तरों में खाते क्या होंगे? क्योंकि मैंने तो दफ्तरों में घरों की तरह इनके खाने के लिए अनाज आदि कुछ देखना ही नहीं था। देखा भी क्या पाता? फाइलों व कागजों के अलावा कुछ हो तभी तो।

मगर चूहे मियां तो चूहे ही थे। मेरे आश्चर्य को और भी अधिक करने के लिए वह आंख मिचौनी से खेलने लगे। कभी खरगोश की तरह कुलांचे भरता खुसुर-खुसुर करता फाइलों को सूंघने लगता, तो कभी बड़े रौब से रैक पर चढ़ जाता, तो कभी मेरे सामने वाली सीट पर रखी टाइपराइटर पर चढ़ जाता। जैसे उसे विश्वास ही न हो पा रहा हो कि जहां वह है, वहां ऐसा हो ही नहीं सकता है कि खाने के लिए अनाज आदि न हो। मुझे उस नासमझ की बुद्धि पर तरस आया। जी में आया, इसे समझाऊं—भई, इस दफ्तर का नाम खाद्य मंत्रालय अवश्य है पर यहां तो मात्र खाद्य की स्थिति व खाद्य की समस्या का लेखा जोखा रहता है। वह भी केवल कागजों और फाइलों पर। जानते हो, यह देवताओं के भी देवता महाराजा

का कार्यालय है। अगर मिया, तुम्हे भूख लगी है ता तुम किसी लाला जी की दुकान म जाओ, किसी किसान के घर या खेता म जाओ जहा अनाज होता है। किंतु मैं उसे समझाता क्या ? आदमी हो ता उसे समझाऊ भी। इस जानवर को क्या समझाऊ, जो न मेरी भाषा समझता है और न मैं ही इसकी भाषा बाल पाता हू। हा, केवल समझान के लिए विवश-सा उसकी ओर देखन लगा। मेरा देखना ही था कि वह चौकन्ना-सा मुझे ही दखन लगा। मुझे उसकी बुद्धि पर अब और भी तरस आया। मैं कुछ हस-सा पडा। मेरा हसना था कि वह एसे भागा जैसे उसे सदेह हो गया हो कि कही उसे पकडकर जेल म बद न कर दिया जाय।

इसके बाद जाने इसकी भूख मिट चुकी थी या वह भय के मारे इधर-उधर निकलना उचित न समझ रहा हो, वह मुझे काफी दर तक दिखायी नही दिया। मुझे भी उसके बारे म अधिक गौर करने का मौका नही मिला। क्योकि तभी हमारे अडर सेक्रेटरी साहब कमरे म ही आकर कह गये थे—सारे सेक्शन के लोग काम पर जोरा से जुट जाओ। 'पार्लियामेंट क्वश्चन है। हर प्रात की फाइलो को अच्छी तरह देखो कि किस प्रात म भुखमरी के कारण कितने आदमी मरे। इस बात का ध्यान रखना कि स्टेटमेंट निल नही होनी चाहिए। वर्ना पार्लियामेंट के मेंबर बौखला उठेंगे। बाल की खाल उधेडना शुरू कर देंगे।

अडर सेक्रेटरी साहब कमरे म जा चुके थे। उनका जाना ही था कि हम सभी फाइलो को खोलने लगे। फाइलो के खुलने स कमरे म एक अजीब प्रकार की आवाजें होने लगी जो मुझे चूहे मिया की फाइलो को सूघने की खुसुर खुसुर सी लगी। मगर किसी भी प्रात की रिपोर्ट म भुखमरी के कारण मरा एक भी केस न मिल पा रहा था जो सेक्शन आफिसर सहित हम सभी के लिए सिरदर्द का कारण बन गया था। तभी चपरासी हजारीमल को एक तरकीब सूझी। उसने सुझाया कि अगर पिछले साल के सारे अखबार इकट्ठे किये जायें तो शायद कुछ काम बन जाये। क्योकि कभी-कभी एसी मौतो का हवाला अखबारो म तो छपता ही है। उसका सुझाव यद्यपि कुछ हद तक सफल हो सकता था पर समस्या यह थी कि पिछले साल के सारे अखबार कैसे इकट्ठे किये जायें और उन्ह देखा कैसे जाये ? क्योकि अखबारो

मे भी ऐसी मौतो का हवाला इतने मोटे अक्षरो मे तो छपता नही था जो अखबार उठाते ही पढा जा सके। अखबार वाले भी क्या कम चालाक है। तभी टेलीफोन की घटी बज उठी। सेक्शन ऑफिसर साहब न टेलीफोन उठाया—हैलो—हैलो—हा जी, हा जी—स्टेटमट बन रही है—आप फिक्र न करें—नही, नही, 'निल' रिपोट नही होगी। क्या कहा ? है जी—रिपोट बनावटी बिल्कुल नही लगगी—तो फिर स्टटमेट के चार कालम बनाय—हा जी, पहला कालम—सीरियल नबर, दूसरा कालम राज्य का नाम—हा जी,—तीसरा कालम प्लेस आफ डेथ—हा जी,—चौथा कालम, टाटल डेथ नबर—हा जी, सब आ गया समझ मे ।

सेक्शन आफिसर साहब चोगा रख चुके थे। झुककर अपनी नोट बुक पर कुछ लिख रह थे। शायद स्टटमट क बताय कालमा को लिख रहे थे। पर उनका चेहरा पहले से काफी विचारमग्न हो आया था। सहसा सिर के बाला पर हाथ फेरत हुए वे पुन हम सभी को देखने लगे। फिर एक गहरी उसास भरत हुए बगल मे बैठे स्टेटिस्टिकल असिस्टेट सरम्रार जी की ओर देखते हुए बाले, सरदार जी, आप तो स्टेटिस्टिक्स म माहिर है, कोई तरीका सोचिए तो।"

"जी साब, मै तो पहले से ही सोच रहा हू।" सरदार जी अपनी दाढी का सहलाते हुए बोले। फिर अपन चेहरे को और भी गभीर बनाते हुए टेबुलेटिंग मशीन की ओर देखने लग। मैं भी गौर से अपन बगलवाली सीट पर रखे टाइपराइटर को दखने लगा। मुमे कुछ भी उपाय नही सूझा। पर तभी सरदार जी बोले, 'साहब मुमे तो कोई और उपाय नही सूझ रहा ह। केवल एक उपाय सूझ रहा है—हर प्रात के बडे-बडे शहरा का नाम अलग-अलग नोट किया जाय। फिर यह अदाजा लगाया जाय कि हर पाच शहरा के पीछे औसतन एक आदमी मर सकता है। इस तरह स्टेटमेट तैयार कर लिया जाय।"

सरदार जी का सुझाव सबको मान्य हो आया। सेक्शन आफिसर न सबको आदश दिया कि एक कागज पर पसिल से बडे-बडे शहरा का नाम नोट करा। मैंने पेंसिल निकालन का दराज खोली ही थी कि मुमे लगा जैसे किसी चीटी या किसी बिच्छू न भरा हाथ काट दिया है। मैन दराज की

ओर देखा ही था कि एक चूहा उछलकर मेरी छाती पर चढ आया। मैं इस अप्रत्याशित चूहे के आक्रमण की कल्पना भी नही कर सकता था मैं उछल पडा। फाइलें इधर उधर बिखर पडी। स्याही की दवात भी गिर पडी। तभी बगलगीर बोला 'वाह, तुम तो बडे डरपोक हो। एक छोटे से चूहे से डर गये। मैं झेप सा उठा। कपडो को झाडता, फाइलो को समेटता पुन पूर्ववत काम पर जुट गया।

स्टेटमेंट भेज दिया गया। कुछ लोग लच पर चले गये थे। मैं कमरे में ही बैठा था। क्योकि आज श्रीमती जी के सुझाव के अनुसार पैसो की तगी से तग आकर पहली बार रोटिया लाया था। पर चूहे मियां के कारण झटके के साथ दराज खोलने का साहस न बटोर पा रहा था। मैंने धीरे से दराज खोली तो चूहे मिया फिर दराज में ही मिले। मगर इस बार वे मुझ पर उछले नही। धीरे से दराज से बाहर निकल भागे। मैंने गौर से रोटियो को देखा तो क्रोध के मारे आग बबूला हो गया। मेरी नयी रुमाल को चूहा तीन जगह से काट चुका था। केवल इस चूहे को भी मैं ही मिला। मैं होठो मे बुदबुदाया। यद्यपि चूहे की जूठी रोटिया खाने की इच्छा नही हो रही थी, पर विवशता भी कोई चीज होती है। जूठी जगह से रोटिया नोच-नोचकर मैं खाने लगा। तभी मैंने देखा कि चूहे मिया कुछ दूरी पर से शिकायत भरी नजरो से मेरी ओर ही देख रहे है। मुझे गुस्सा तो उस पर आ ही रहा था। धीरे से बोला "भाग जा चोर साला कही का।"

मगर चूहे मिया भागे नही बल्कि छाती तानकर सिर उठाकर मेरी ओर कुछ इस तरह देखने लगा जैसे कहना चाहता हो—वाह साहब वाह, एक तो खाना न देकर हम इस तरह खाने को मजबूर करते हो, उस पर भी अपनी ही सिखायी विद्या के कारण हम चोर कहते हो। तुम तो बडे ढोगी आदर्शवादी हो। कहा है आपका वह आदर्श जिसका तुम जगह-जगह ढिंढोरा पीटते हो—सब मनुष्य बराबर हैं, सब समान हैं। मनुष्यो के लिए तो तुम्हारा यह आदर्श। हम बेचारे असहाय पशु-पक्षियो के लिए आदर्श अलग। अब मैं उसका देखना अधिक बरदाश्त न कर सका। पाव उसकी ओर बढाया ही था कि वह पाच छह कदम पीछे भागकर पुन मुडकर मुझे देखने लगा,

जैसे अभी ऐसा ही कुछ और कहना चाहता हो। पर फिर मैंने उसकी ओर देखा नहीं। रोटियां खाकर हाथ धोने बाहर चला गया।

बस उस दिन के बाद तो मेरा भी एक तरह से रोटियां लाने का रूटीन बन गया। साथ ही मियां चूहे का भी दराज में रखी रोटियां को चुपके से खा जाने का। रोटियां खाते समय चूहे मियां को कभी-कभी गालियां भी देता। मुझे चुझलाते देख मेरे एक दो कुलीग जो मेरी इस झुंझलाहट को जान चुके थे, मुझे सलाह देते—भई, चार-पांच रुपये का टिफिन कैरियर ले आओ। बस, तुम्हारी झुंझलाहट दूर।

मैं उनका धन्यवाद अदा करता। मन ही-मन योजना बनाता कि अबकी पहली को जरूर टिफिन-कैरियर खरीदूंगा। पर पहली को बनिया, दूध मकान का किराया व कोयले का बिल पूरा करने की समस्या खड़ी हो जाती। टिफन-कैरियर का विचार धरा-का धरा रह जाता। अलबत्ता रोटियां को दराज से निकालते समय खीज अवश्य उठता। इस तरह चार-पांच महीने गुजर गये। इन्हीं दिनों महाराज इंद्र की बड़ी कृपा हुई। सभी क्लर्कों को आठ आठ रुपये तनख्वाह बढ़ाने का ऐलान किया गया। मेरी प्रसन्नता का ठिकाना ही नहीं रहा कि तनख्वाह के अलावा तीन महीने के चौबीस रुपये जो एरियर मिलेंगे उनसे दिन-पर दिन बढ़ती महंगाई से लड़ सकूं या नहीं, पर इस कम्बख्त चूहे से अवश्य लड़ाई लड़ूंगा। टिफिन-कैरियर अवश्य ले लूंगा। पर उन दिनों जब भी चूहे को देखता तो लगता जैसे चूहे मियां शिकायत कर रहे हों—यह अकेले-अकेले खाने की दिन-पर-दिन बढ़ती प्रवत्ति क्या अब तुम भी शुरू कर दोगे। अगर ऐसा करोगे तो हमारा क्या होगा? हम तो भूखे मर जायेंगे। आखिर हम भी तो प्राणी हैं। उसकी इस शिकायत से मैंने एक तरकीब सोची। उसकी शिकायत भी ठीक ही थी। रोटी खाते समय दो चार टुकड़े इसके लिए सीट के नीचे फेंक दूंगा। मगर टिफिन-कैरियर लाऊंगा जरूर। जूठी रोटी तो नहीं खानी पड़ेगी।

जिस दिन एरियर के रुपये मिलने वाले थे, उस दिन एक अजीब घटना घटी। मेरी तबीयत खराब थी। मैं वहीं सीट पर लेट गया। तभी क्या देखता हूं कि दराज में एक चूहे की ही शक्ल की अजीब आकृति मुझसे कह

रही है—भर दोम्त, तुम्ह हम एक राज की बात बनाते है। प कमीशन क चेयरमैन साहब का नाम तो तुमने सुना ही होगा। उनके बारे म बात खोल-कर सुन लो। एक दिन जब वे दूसरी बार हमारे भागी अरकम गणेश जी के पास आय तो बडे ही घबरा रहे थे, गणेश जी ने पहले उन्हें डाटा था। थोडी देर बाद थोडा गुस्ताकर वे गणेश जी से बोले "मुझे तुम्हारे उन सबका से बडी सहानुभूति है। जो पढ लिखकर दफ्तरो के अन्दर रहने लगे है। उनके ही कारण मैंने एक स्कीम निकाली है कि दफ्तरो म काम करने वाले नब्बे प्रतिशत चपरासियो व क्लर्कों की इतनी तनख्वाह कर दी जाय कि वे शेष दस प्रतिशत अफसरो की तरह कैंटीन से नाश्ता कर सकने या घरो से नौकर व चपरासियो से भोजन मगवाने का दबाव भी न दख सकें। ताकि मज-बूरन वे रोटियां लाना शुरु करें जिससे उनके बचे-खुचे दो दो, चार चार रोटी के टुकडो से अथवा हिंदुत्व के पचग्रास के कारण आपके सबका का भी पेट भर जाय। उनकी यह बात सुन गणेश जी भी खुश हो गये उन्होंने फटाफट दराज से उनके अमाशनवाला कम निकाल हस्ताक्षर कर दिये और विष्णु भगवान जी के पास रिकमड कर दिया। उनके जाने के बाद जब हमने गणेश जी को समझाया कि आपने तो हमारे ही साथ अन्याय कर दिया। भला, जरा सोचिए तो भुक्खड, क्या दान करेगा। इस तरह तो हम भूखे मर जायेंगे। अब गणेश जी सिर पीटते रह गये। बोले "बडा चालाक है। मेरी तो मति भ्रष्ट हो गयी।' फिर कुछ गभीर होकर बोले 'कोई बात नही, है तो हिंदू ही हिंदू लोग जब भी कोई काम करते हैं तब मेरी पहले पूजा करते है। अगली बार पकड़ूगा उसे।' पर अब पता चला कि वे तो ईसाई हो गये। अब तो गणेश जी क्या किसी हिंदू देवता के वस से बाहर की बात हो गयी। इसलिए भई सुन लो, अब अगर तुम भी अफसरो की तरह टिफिन-करियर लाने लगोगे तो तुम लोगो की और भी मुसीबत निकल जायगी। सोच लो!

मैं अवाक्-सा उस आकृति को देखता ही रह गया। क्लर्क जो ठहरा। क्लर्क भी बीस बरस से। उसकी बातो के सत्य-असत्य को क्या सोच पाता! फिर वह क्लर्क ही क्या जो अपनी अक्ल से काम कर सके। मेरी चुप्पी से चिढकर अचानक ही वह आकृति मुझ पर झपट पडी। मै चीख उठा। नीद

खुली तो देखा लोग लंच पर जा चुके थे। कमरे में मैं ही था अकेला। सिर के बालों पर हाथ फेरता हुआ दराज खोली तो दंग रह गया। दराज में पहली बार चार-पांच चूहे थे। अब वह चूहा मुझे बड़ा ही डिप्लोमेट लगा। मैं उसकी डिप्लोमेसी के बारे में सोचता रह गया—अब तो यह कमबख्त बड़े-बड़े अफसरों की तरह अपने सारे रिश्तेदारों को दफ्तरों में बुलाने लग गया है। इस तरह तो थोड़े ही दिनों में मेरे लिए कुछ भी नहीं बच पायेगा। कल निश्चय ही टिफिन-करियर ले आऊंगा।

अगले दिन सचमुच ही मैं टिफिन कैरियर ले आया। उस दिन चूहे मियां मुझे बहुत उदास दिखायी दिये। उसकी उदासी को देख मैंने दो चार टुकड़ों के बदले सात-आठ टुकड़े मीट के नीचे फेंकने शुरू कर दिये। यह क्रम चलता रहा। मगर इसी बीच चूहे मियां ने बहुत ही उपद्रव खड़ा कर दिया। अब उसने फाइलों व कागजों को कुतरना शुरू कर दिया। जो टिफिन-करियर के अभाव में अकेले मेरे लिए सिरदर्द नहीं बना, अब वह सारे दफ्तर के लिए ही सिरदर्द बन गया। सबसे अधिक सिरदर्द उस दिन बना जब चूहे मियां ने सबसे बड़े अफसर की दराज से एक कांफीडेंशियल फाइल को कुतर डाला। अब क्या था, सारा दफ्तर चूहों के उत्पात से बचने के लिए ऐसे खड़ा सा हो गया, जैसे चूहों द्वारा खड़ी की गयी समस्या सबसे बड़ी समस्या हो। सभी कमरों में चूहे मियां द्वारा किये गये छेदों को चपरासियों द्वारा बन्द कर दिया गया और बढ़ई को बुलाकर सभी टेबुलों की दराजों को ठीक करवा दिया गया। मगर चूहे मियां कहां मानने वाले थे?

कुछ दिन बाद एक दिन सवा पांच बजे हम लोग घरों को चलने की तैयारी में ही थे कि अचानक हमारे सेक्शन आफिसर ने कमरे में आते ही बड़े अफसर का हुक्म सुनाया कि सारा सेक्शन रुक जाये। एक अर्जेंट लेटर इश्यू करना है। सभी प्रसन्नता भरी नजरों से उनका मुंह देखते रह गये। यद्यपि मुझे उस दिन काम था पर ओवरटाइम के पैसों का लालच हो गया। मगर कुछ देर बाद जब लेटर देखा तो चकित रह गया। चूहे मारने वाली दवा के लिए इडेंट मांगे जा रहे थे जिन्हें सारे हिंदुस्तान के व्यापारियों

का जाना था। उस अर्जेंट लेटर को रात पौने ग्यारह बजे तक हमने यन केन प्रकारेण इश्यू किया।

पर अगले दिन दफ्तर पहुंचा तो मैं भौचक्का रह गया। कई कम्पनी फर्मों के रिप्रेजेंटेटिव हाथों में बड़े-बड़े चमड़े के बैग थामे इडेंट बॉक्स के सामने कतार में खड़े दिखायी दिये। मैं हैरान हो गया। इस चूहे मारने वाली दवा के इंडेंट का समाचार तो आकाशवाणी द्वारा प्रसारित भी नहीं किया गया। फिर इन लोगों को रातोंरात कैसे पता चल गया? पर तभी खयाल आया कि शायद साढ़े नौ बजे वाली डाक में लेटर मिल गया होगा। सेक्शन में घुसा तो सेक्शन आफिसर साहब किसी से कहते सुनायी दिये—अब तो कुछ दिनों में काफी काम बढ़ जायगा। मुसीबत खड़ी कर दी इन चूहों ने।

दीवाल पर टंगी घड़ी बारह बजा रही थी। अभी लंच होने में आधा घंटा शेष था। मगर सेक्शन आफिसर साहब की सुबह कही बात के कारण सभी काम पर जुटे थे। कमरे में छायी खामोशी को कभी-कभी टिक टिक टाइपराइटर की आवाज अवश्य भंग कर रही थी। तभी दो बड़े ही हृष्ट-पुष्ट सूटेड-बूटेड व्यक्ति सेक्शन आफिसर साहब की सीट के पास खड़े हो गये। उनमें से एक ने उन्हें नमस्ते करके एक चिट उन्हें सौंपी। चिट पढ़ते-पढ़ते उनका चेहरा काफी गंभीर हो आया। वे दोनों उनके पास वाली कुर्सियों पर बैठ उनसे बात करने का प्रयास कर ही रहे थे तभी एकाएक सेक्शन-आफिसर जोर जोर से चिल्लाते हुए उछल पड़े। उनका उछलना था कि फाइलों आदि से भरा टेबल का ऊपरी तख्ता आगंतुकों पर उछल पड़ा। मगर वे फिर भी चिल्लाते चिल्लाते अपने दोनों हाथों से दायें पांव को कभी किसी जगह, कभी किसी जगह पकड़ते फिर छोड़ते व फिर पकड़ते रहे। हम सभी घबराकर उनकी ओर भागे। उनके पास पहुंचे तो देखा उनके दायें पांव के मोजे से रपटता एक चूहा उछलकर भागता दिखायी दिया।

तब तक लोग अन्य कमरों से भाग भाग हमारे सेक्शन में आ चुके थे। मगर वे दो सूटेड-बूटेड आगंतुक कमरे में गायब थे। जाने क्या? शायद

उन्हें खतरा हो आया हो कि कहीं सारा दोष उन पर न मढ़ दिया जाय। सेक्शन आफिसर साहब अब यद्यपि कुछ संतोष की सांस ले रहे थे, किंतु बोल फिर भी नहीं पा रहे थे। हम लोग हैरान से उन्हें देख रहे थे। सारे कमरे में खामोशी थी। मगर दरवाजे के पास खड़े अन्य सेक्शनों के लोग आपस में बातें कर रहे थे कि बाहर से एक आवाज सुनायी दी, "अब तो भाई अहिंसावादी चूहे भी हिंसावादी हो गये।" तभी बाहर ही से एक आवाज और आयी "शायद यह फ्रायड का शिष्य हो।"

●●● हुसा की ईजा

हालांकि हुसा अभी गांव में दिखने वाली उस पहाड़ी पर दिखा था जहां से गांव पहुंचने में लगभग आधा घंटा लगता था। पहाड़ी धरती तथा रास्तों की अपनी बात जो थी। पर गांव से साफ दिखते हुसा के पांवों की तेजी से स्पष्ट था—वह इस दूरी को पंद्रह-बीस मिनट में तय कर लेगा और गांव पहुंचकर परमा द्वारा उसे दी गयी चुनौती की धज्जियां ही उड़ाकर दम लेगा। यही वजह थी कि जितनी तेजी से हुसा आ रहा था उससे भी कई गुना गांव में सरगर्मियां शुरू हो आयी थीं। बच्चों के लिए तो हुसा का आना एक तरह से एक खेल-सा हो आया था। सयाने थे कि वे इस तावड़ तोड़ कोशिश में जुट आये थे—हुसा के गांव पहुंचने के बचे समय का फायदा उठाकर किसी तरह परमा को मनायें ताकि अप्रिय घटना से गांव बच सके। जबकि जवान थे कि हुसा की ईजा के घर पर ऐसे सिमटने लगे जैसे परमा के साथ खड़ा होकर वे सब हुसा को सबक ही सिखाकर दम लेंगे। उसने पूरे गांव को काफी समय से दुखी जो कर रखा था। औरतें थीं कि इशारों ही इशारों में आपस में बातें कर रही थीं—देखें अब क्या होता है?

इसलिए एक तरह से हुसा के इस बार के आने की वजह से पूरा गांव हिल उठा था। क्योंकि परमा द्वारा हुसा को दी गयी चुनौती के कारण हो सकने वाले झगड़े में दोनों में से कोई मर-मुरा गया तो पूरे गांव के बंधने की एक स्थिति आ सकती थी। इसी के साथ खतरा यह भी कम नहीं था—ताकतवर हुसा के हाथों परमा के पिटने की स्थिति को देख, गांव वाले ही हुसा पर एक साथ पिल पड़े तो भलाई-बुराई का रूप धारण न कर ले। नतीजा यह था कि कुछ लोग इस हक में थे कि हुसा को बीच में ही रोकने

का प्रयास किया जाय ताकि मामला कुछ गलत रूप न ले। पर हसा के आतंक से सब डरते थे। किसी में यह साहस नहीं था। भला यदि ऐसा ही साहस उनमें होता तो चुनौती की बात सुन तरबूबू यह थोड़े ही कहती—चलो गाव में एक बेटे ने उसे ललकारा तो सही—तरदा भी परमा को साहस जुटाने के बदले यह थोड़े ही कहते—बेटा, हसा की तो मति को पत्थर पड गया है। यह क्या बवाल अपने सिर ले बैठा। वैसे बेटा तू बात सही कह रहा है पर समझाया या रोका उसे जाता है जिसे समझ हो। यदि उसे समझ ही होती तो क्या हसा ऐसा करता। बेटा, यह तो दुनिया का नियम है जो जैसी रोटी तोडता है उसकी बुद्धि वैसी ही हो जाती है। हा, दीवादा अवश्य यह कह रहे थे—बेटा फिक्र मत करना। पूरा गाव तेरे साथ है। अलवत्ता हम यह जरूर चाहते हैं हमारा विरोध बाद में शुरू हो, पहले उसकी ईजा विरोध करे।

जबकि इन्ही क्षणों की विचित्रता यह थी कि हसा की ईजा गाव के लोगों के जमा हो जाने तथा हसा के आने की स्थिति से बेखबर थी। क्योंकि पिछली साझ—तेरा लडका मर गया है सुन शब्दो के कारण वे इस समय ऐसी मानसिकता में जी रही थी जिसमें वे पत्थर की प्रतिमा की तरह अंदर वाले दरवाजे के पास बैठी थी। अन्यथा तो वे इस समय घर कहा होती। उनका तो रोज का नियम था। दिशा खुलते ही दैनिक काम से निबट वे अपनी लाठी पकडे आगन में खडी होती थी। सोचती—ऐसा घर कौन हो सकता है जहा पहुचते ही उन्हे चाय मिले। उनकी नजरो में ऐसा घर वह होता था जिसका बेटा पिछली साझ नौकरी से लौटा होता था। ऐसा घर न सूझ पाने पर वे यह सोचती थी—अब ऐसा कौन घर हो सकता है जो उन्हे खाली न लौटाये। पर आज अपने इसी नियम को तोड वे अपने घर ही सिमटी हुई थी। उल्टा आज तो रात उन्होने फैसला जो किया था—चाहे वे भूखी मर जाये पर अब

वैसे ऐसा फैसला वे एक बार नही, कई बार कर चुकी थी। पर हर बार उन्हें अपना फैसला मजबूरीवश बदलना पडता था। भला पेट का गड्ढा ही वह गड्ढा क्या जो आदमी को न झुकाये। फिर घर में कुछ भी न होने के कारण उनका तो सभी कुछ गाव था। अलवत्ता इस बार उनके मन को

[illegible] [illegible] है [illegible] [illegible] था। हेमा द्वारा [illegible] [illegible] का [illegible] का भा ता [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] बात नहीं [illegible] था जब उनका हेमा [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] रहा है—[illegible] की आंखें तथा [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है—हेमा के जाने के बाद [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] की [illegible] [illegible] [illegible] एकाएक [illegible] [illegible] हेमा [illegible] [illegible] था। उनका [illegible] था कि हेमा [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] लिया था। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

[illegible] [illegible] [illegible] हेमा के [illegible] के बाद [illegible] उन पर [illegible] था। क्योंकि [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] थी। उन पर तो किसी का बस था [illegible] [illegible] उन पर [illegible] [illegible]। पर वे मौन रही थीं। इसके अलावा वे [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] उनकी [illegible] के सामने अपना वह सारा [illegible] [illegible] [illegible] हेमा [illegible] [illegible]। होने के तीसरे दिन उनके हाथों को [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] के वह सोच रही थी—अपने लड़के का वे नाम [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] [illegible] उनके [illegible] [illegible] गांव की एक औरत [illegible] [illegible] [illegible]। उसने एक दिन उन [illegible] [illegible] दूध में दूध और पानी को [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] थी। इस बात का उन पर [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] अपने [illegible] का नाम हेमा रखने का पूरा फैसला [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] उनको [illegible] [illegible] और ससुर ने उनका जायज हक [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] [illegible] था वह अपने हेमा को [illegible] [illegible] बनायेगा [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] को [illegible] [illegible]। [illegible] भी यह [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] पड़ा था—[illegible] कोई बात [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। [illegible] के दिन बीत जाते हैं। थोड़े [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] सुनना पड़ा था—[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। पर [illegible] [illegible] [illegible] का सहारा [illegible] पर इसने [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] थी। उन्होंने न सिर्फ उनका [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] अपने हेमा को [illegible] बनाने के [illegible] [illegible] [illegible]।

हालांकि मजबूरियां उनके लिए यहां तक खड़ी हो आयीं कि जमीन न होने के कारण उनके लिए दूसरों के घर काम उस हालत में करना पड़ा जबकि हसा दो माह का भी नहीं हुआ था। क्योंकि घर में थोड़ा-बहुत जो कुछ था भी उसमें उसे पति की गति क्रिया करनी पड़ी। छोटे ससुर तथा उनके बच्चे उनके पास अभाव के इन क्षणों झांकने तक नहीं आये। अन्न पर खर्च करने की जो नौबत थी। हां, थोड़ा-बहुत उनके लिए राहत की बात यह थी कि परमा की ईजा ने अपनी ओर से उन्हें पूरी मदद की। यानी कि मजबूरी के क्षणों में वे हसा को दूध और पानी आदि पिलाकर उसकी देखभाल ही नहीं किया करती थी बल्कि उन्होंने उन्हें काफी जमीन भी दी थी। वर्ना यदि वे उनकी यह मदद नहीं करती तो उनके तो भूखों मरने की नौबत आ जाती। शायद दुःख ही दुःखों को बांटा करता है। क्योंकि दोनों के दुःख लगभग समान थे। अंतर यह था यदि परमा की ईजा के पास जमीन थी तो हसा की ईजा के पास परमा की बीमार ईजा से बेहतर शरीर था। सोच भी दोनों का एक-सा था। दोनों गांव के पढ़ते बच्चों को देख यही सोचती रहतीं—काश वे अपने बच्चों को ऐसे पढ़ा पातीं। उन्हें क्या पता था कि कोरी भावना से यह संभव नहीं है। वह भी उस जमाने में जबकि संविधान में सभी बच्चों को अपना विकास करने की पूरी स्वतंत्रता की बात कहकर यह समझ लिया जाता है कि बस काम पूरा हो गया है। शायद संविधानी आयतों की तरह हसा की ईजा की नसीब भी थी। हसा को पढ़ते देख तो फूली नहीं समाती थी। वे अनपढ़ अवश्य थीं पर नासमझ नहीं। इसीलिए वे हसा को अपने तरीके से पढ़ाया करती थी—बेटा! धरती में सबसे बड़ा गुरु हुआ करता है। गुरु तो साक्षात भगवान हुआ करते हैं। बेटा शुक्राचार्य ऐसे गुरु थे जिन्होंने अपने शिष्य राजा बलि को बचाने में अपनी आंख तो गवां दी पर ऊफ तक नहीं की। बल्कि कई बार तो वे हसा को राजा बलि के बली बनने वाली पूरी कहानी सुनाती थीं। उन्हें क्या पता था कि बदले परिवेश में बलि के जमाने से चले आ रहे गुरुकुलों का आधुनिक भारत के नये महर्षि मकाले ने जहां सफाया कर दिया है। वहीं इन दिनों गुरुकुलों का स्थान स्कूलों ने लिया है। इसी का नतीजा यह कि गुरु के बदले अब शिक्षकों को मास्टर

जरा ज्यादा देर लगी थी। हमा द्वारा रमदयूबू का दिया धक्का था भी तो अपना असर था। रात उन्हें कई बार यही लगा था जैसे उनका हुमा लाडिया का गट्ठर बांध रहा है—गांव की औरतें तथा सयाने अवाक्-से उसे देख रहे हैं उन्हें उसका रहे हैं—हुमा के जाने के बाद तो तू खूब कहा करती है अब रोया करे। पर वे गामाणा आंगन में बैठी हैं। अपने भाग्य को कोस रही हैं। तभी तो तब आत्मिया की चुप्पी का दर्द एकाएक रमदयूबू ने हुमा का रोना था। उनका सामना था कि हुमा ने उन्हें एम धक्का दिया कि वे धड़ाम से गिर पड़ी। इसी पर सरदा तमाम गांव उत्तेजित हुआ था। यह तो तब विशन वडवाज्यू ने उन लोगों को रोक लिया था। वना जान तब भी क्या होता।

तब उस दिन हुमा के जाने के बाद गांव उन पर खीजा था। क्योंकि हुमा ने पूरे गांव को खरी-खोटी सुनायी थी। उस पर तो किसी का वश था नहीं। गुस्सा उन पर उतरा था। पर वे मौन रही थी। इसके अलावा वे कर भी क्या सकती थी। हां तब उनको आत्मा के सामने अपना वह सारा अतीत दिखा था जिसमें हुसा के पैदा होने के तीसरे दिन उनके हाथों की चूड़ियां उन क्षणों टूटी थी तब वे यह सोच रही थी—अपने लड़के का वे नाम क्या रखेंगी। इसी बार में तो उनके मन मस्तिष्क को गांव की एक औरत ने झकझोरा था। उसने एक दिन उस पानी मिले दूध से दूध और पानी को अलग-अलग करने वाले हंस की बात सुनायी थी। इस बात का उन पर इतना असर था कि उन्होंने अपने लाल का नाम हुसा रखने का पूरा फैसला कर लिया था। क्योंकि उसकी छोटी सास और ससुर ने उनका जायज हक सब छीन लिया था। उनका सोच था वह अपने हुसा को ऐसा हंस बनायेंगी जो धरती से न्याय और अन्याय को अलग-अलग करेगा। हद भी यह कि सोच के उन्हीं क्षणों में बाद ही उन्हें सुनना पड़ा था—चिन्ता कोई बात नहीं, भगवान ने तुम्हें सहारा दिया है। दुःख के दिन बीत जाते हैं। थोड़े दिनों में तुम्हारा लाल तुमसे मां कहेगा और या यह सुनना पड़ा था—चला पिता टोका ही सही। पर तुम्हारे दुखी क्षणों का सहारा पर इतने पर भी वे हिम्मत हारने वाली महिला नहीं थी। उन्होंने न सिर्फ उसका का नाम हुसा रखा। वरन अपने हुमा को हंस बनाने के प्रयास शुरू कर दिये।

हालांकि मजबूरियां उनके लिए यहां तक खड़ी हो आयी कि जमीन न होने के कारण उनके लिए दूसरा के घर काम उस हालत म करना पडा जबकि हंसा दो माह का भी नहीं हुआ था। क्योंकि घर मे थोडा-बहुत जो कुछ था भी उसमे उसके पति की गति क्रिया करनी पडी। छोटे ससुर तथा उनके बच्चे उनके पास अभाव के इन क्षणों झांकने तक नहीं आये। आन पर पुछ करने की जो नौबत थी। हां थोडा-बहुत उनके लिए राहत की बात यह थी कि परमा की ईजा ने अपनी ओर से उन्हें पूरी मदद की। यानी कि मजबूरी के क्षणों म व हंसा को दूध और पानी आदि पिलाकर उसकी देखभाल ही नहीं किया करती थी बल्कि उन्होंने उन्हें काफी जमीन भी दी थी। वर्ना यदि वे उनकी यह मदद नहीं करती तो उनके तो भूखा मरने की नौबत आ जाती। शायद दुख ही दुखों को बांटा करता है। क्योंकि दोनों के दुख लगभग समान थे। अंतर यह था यदि परमा की ईजा के पास जमीन थी तो हंसा की ईजा के पास परमा की बीमार ईजा से बेहतर शरीर था। सोच भी दोनों का एक-सा था। दोनों गाव के पढते बच्चों को देख यही सोचती रहती—काश वे अपने बच्चों को ऐसे पढा पाती। उन्हें क्या पता था कि कोरी भावना से यह संभव नहीं है। वह भी उस जमाने में जबकि संविधान में सभी बच्चों को अपना विकास करने की पूरी स्वतंत्रता की बात कहकर यह समझ लिया जाता है कि बस काम पूरा हो गया है। शायद संविधानी आयतों की तरह हंसा की ईजा की नसीब भी थी। हंसा को पढते देख तो फूली नहीं समाती थी। वे अनपढ अवश्य थी पर नासमझ नहीं। इसीलिए व हंसा को अपने तरीके से पढाया करती थी—बेटी, धरती में सबसे बडा गुरु हुआ करता है। गुरु तो साक्षात भगवान हुआ करते हैं। बेटा शुक्राचार्य ऐसे गुरु थे जिन्होंने अपने शिष्य राजा बलि को बचाने में अपनी आंख तो गवा दी पर ऊफ तक नहीं की। बल्कि कई बार तो वे हंसा को राजा बलि के बली बनने वाली पूरी कहानी सुनाती थी। उन्हें क्या पता था कि बदले परिवेश में बलि के जमाने से चले आ रहे गुरुकुलों का आधुनिक भारत के नये महर्षि मकाले ने जहां सफाया कर दिया है। वहीं इन दिनों गुरुकुलों का स्थान स्कूलों ने लिया है। इसी का नतीजा यह कि गुरु के बदले अब शिक्षकों को मास्टर

जरा "ना" टग गया थी। हंसा द्वारा कथईबुबू ना। दिन छवर का भी ता अपना अगर था। गाव उर सर्व बार पड़ी मगा था अग उनरा हंसा नरसिंपा का स्टूर थाव रहा है—गाव की औरतें तथा गयाा अगार-न उग रही है सद उर उनगा र, है—हंसा क जाा क बा ता गू गूब महा मरगी है अब गेर ग्ग। पर ब गामा आगा म बैठी है। अपन माग्न का भाग रहा है। सभी मा सब आरमिया की घुग्गा का रग तगाएग गम-बुबू। हंसा का गावा था। उनरा शेवना था कि हंसा न न्हें टग धवरा दिया कि व धराम म गिर पड़ी। इसी पर तरन्त सया गाव उजेगिन हुआ था। यह ता तव विना कटवाबू न उग गागा का गोप लिया था। बना जार तव भी क्या हाता।

तब उग दिन हंसा क जाने क बाद गाव उन पर रोता था। क्यांकि हंसा ने पूरे गाव का खरी-खोटी सुनायी थी। उन पर तो किसी का बस था नहीं। गुस्सा उन पर उतरा था। पर व मौन रही थीं। इतर अनाया व पर भी क्या सकती थी। हां तब उनकी आत्मा के सामने अपना यह सारा अतीत दिखा था जिसम हुंसा क पैदा होने क तीसरे दिन उनक हाथों की चूड़िया उन क्षणों टूटी थी तब व यह सोच रही थीं—अपने लड़के का व नाम क्या रखेंगी। इसी बार म तो उनक मन मस्तिष्क का गाव की एक औरत न झकझारा था। उसने एक दिन उस पानी मिल दूध स दूध और पानी का अलग-अलग करने वाले हंस की बात सुनायी थी। इस बात का उन पर इतना असर था कि उन्होन अपन लाल का नाम हंसा रखन का पूरा फसला कर लिया था। क्यांकि उसकी छोटी सास और ससुर न उनका जायज हक तक छीन लिया था। उनका सोच था वह अपने हंसा को एसा हंस बनायगी जो धरती स न्याय और अन्याय को अलग-अलग करेगा। हद भी यह कि सोच ने उन्ही क्षणो क बाद ही उन्ह सुनना पड़ा था—बणो कोई बात नहीं, भगवान न तुम्ह सहारा दिया है। दु:ख के दिन बीत जात ह। थोड़े दिनों म तुम्हारा लाल तुमसे मा कहेगा और या यह सुनना पड़ा था—चला पिता टाका ही सही। पर तुम्हारे दुखी क्षणों का सहारा पर इतने पर भी वे हिम्मत हारने वाली महिला नहीं थीं। उन्होन न सिर्फ उसका का नाम हंसा रखा। वरन अपने हंसा को हंस बनाने के प्रयास शुरू कर दिय।

हालांकि मजबूरियां उनके लिए यहां तक खड़ी हो आयी कि जमीन न होने के कारण उनके लिए दूसरों के घर काम उस हालत में करना पड़ा जबकि हंसा दो माह का भी नहीं हुआ था। क्योंकि घर में थोड़ा-बहुत जो कुछ था भी उसमें उसे पति की गति क्रिया करनी पड़ी। छोटे ससुर तथा उनके बच्चे उनके पास अभाव के इन क्षणों झांकने तक नहीं आये। आने पर खर्च करने की जो नौबत थी। हां थोड़ा-बहुत उनके लिए राहत की बात यह थी कि परमा की ईजा ने अपनी ओर से उन्हें पूरी मदद की। यानी कि मजबूरी के क्षणों में वे हंसा को दूध और पानी आदि पिलाकर उसकी देखभाल ही नहीं किया करती थी, बल्कि उन्होंने उन्हें काफी जमीन भी दी थी। वर्ना यदि वे उनकी यह मदद नहीं करती तो उनके तो भूखों मरने की नौबत आ जाती। शायद दुःख ही दुःखों को बांटा करता है। क्योंकि दोनों के दुःख लगभग समान थे। अतः यह था यदि परमा की ईजा के पास जमीन थी तो हंसा की ईजा के पास परमा की बीमार ईजा से बेहतर शरीर था। सोच भी दोनों का एक-सा था। दोनों गांव के पढ़ते बच्चों को देख यही सोचती रहती—काश वे अपने बच्चों को एस पढ़ा पाती। उन्हें क्या पता था कि कोरी भावना से यह संभव नहीं है। वह भी उस जमाने में जबकि संविधान में सभी बच्चों को अपना विकास करने की पूरी स्वतंत्रता की बात कहकर यह समझ लिया जाता है कि बस काम पूरा हो गया है। शायद संविधानी आयतों की तरह हंसा की ईजा की नसीब भी थी। हंसा को पढ़ते देख तो फूली नहीं समाती थी। वे अनपढ़ अवश्य थी पर नासमझ नहीं। इसीलिए वे हंसा को अपने तरीके से पढ़ाया करती थी—बेटे, धरती में सबसे बड़ा गुरु हुआ करता है। गुरु तो साक्षात भगवान हुआ करते हैं। बेटा शुक्राचार्य ऐसे गुरु थे जिन्होंने अपने शिष्य राजा बलि को बचाने में अपनी आंख तो गंवा दी पर ऊफ तक नहीं की। बल्कि कई बार तो वे हंसा को राजा बलि के बली बनने वाली पूरी कहानी सुनाती थी। उन्हें क्या पता था कि बदले परिवेश में बलि के जमाने से चले आ रहे गुरुकुलों का आधुनिक भारत के नये महर्षि मैकाले ने जहां सफाया कर दिया है। वहीं इन दिनों गुरुकुलों का स्थान स्कूलों ने लिया है। इसी का नतीजा यह कि गुरु के बदले अब शिक्षकों को मास्टर

जी कहा जाता है। इस भेद का उन्हें पता तब चला जब नवीन की ईजा ने उनसे कहा—वणा तर हमा न तो हद कर दी। तलादी गाव के आवारा वहन स मेरे नवीन का तो पीटा ही। साथ ही पूछने पर बोला—भला यह भी कोई बात हुई कि मेरे गुरुजी पीटने को वह और मैं नवीन को न पीटूं।

तब उन्हें पता चला था उनकी सीख का हमा पर क्या असर पड़ा है। तब उन्होंने नवीन की ईजा स माफी मागी थी। छानबीन करन पर उन्हें पता लगा उनका हमा न सिर्फ नदन को गुरु समझ बठा है, वरन दस-बारह ही साल की उम्र मे चरस और गाजा पीने लगा है। साथ ही वह हफ्तो हफ्ता स्कूल जान के बदले दूर के जगलो मे जाकर आन जान वाली अकेली दुकेली औरतो का छेडन लगा है। भला नये जमाने के विकृत प्रभाव का तो अपना अलग असर हुआ करता है। इन दिनो तो कई बडे आदमी के हो आय थे जिनके बच्चे दिन भर तो नदन की तरह आवारागर्दी करें और शाम को घर रखे ट्यूशनो की बैसाखियो के सहारे खडे रहे। यही वजह थी कि इन बातो को सुन वे स्तब्ध रह गयी थी। इससे भी अधिक दुख की बात उनके लिए यह हो आयी कि हमा के कारनामो का पता लगने पर उनकी वह छोटी सास उनके पास सहानुभूति के झूठे आसू बहान आयी जो उनके दुखो का कारण थी। सास के इस आने का उनपर यह प्रभाव पडा कि उनके लिए अपने को सभाल पाना भी कठिन हो आया था। व तो उस दिन उससे भी अधिक रोयी थी जब उनके हाथो की चूडिया टूटी थी। तब कोई और उपाय न देख घर के देवालय मे उन्होंने भी मनौतिया की थी—प्रभो! मेरे हमा को अब भी सभाल दो क्या गुनाह किया है मैंने रात रात भूखी रहकर मैं हमा की कापी किताब जुटाती रही कापी किताबो व फीस के कारण मैंने न दिन देखा न रात पर पर यह क्या प्रभो अब भी बचा दो हमा को उसे क्या पता था कि वे जिन देवी देवताओ की मनौतिया कर रही हैं वे मनुष्य नही जो पिघल जायें। वे तो कर्म फलो के एस देवता हैं जिनकी नजरो म अहल्या के अहल्या बनने के पीछे अहल्या के ही अपने कर्म थे। वर्ना इद्र की निगाह थोडे ही बदलती। शायद ये भी हमा के ही कर्म थे जो उसके वास्ते वह ऐसा बिगडता गया कि एक दिन आवारागर्दी करने के बावजूद वह नदन की विधवा बहन को अपने घर

ले आया। पता नही उसके पीछे कारण उसके गुरु द्वारा मागी गयी गुरु दक्षिणा थी या दोनो के दिल ही मिल आये थे। यह अलग बात है कि हसा की इजा मे उसकी जहा कभी बनी नही वही वह एक दिन पिता के मरते ही नदन का सहारा पा पुन मायके चली गयी। शायद अपने दो हसा को हस बनाने के लिए उसके पास इसके अलावा और चारा नही था। यहा तो पेट पालने तक की परेशानी थी।

अब पूरा गाव हसा की ईजा के आगन मे जमा हो आया था। औरते तथा बच्चे अवश्य दूर दूर खडे थे। लगता था जसे हसा की ज्यादतियो से खीज-कर उन्होने परमा को मनाने के बदले हसा को सबक सिखाने की ठान ली है। क्योकि इस बार वह भरे उजाले आ रहा था। अन्यथा तो वह तब आता था जब चारो ओर अधेरा होता था। वह तो जाते समय हरकत कर अपने आने की एसी सूचना गाव को देता था कि गाव आया है। वर्ना तो लोगो को शायद ही पता चलता। जहा तक हसा द्वारा आज ले जा सकने वाली चीज की बात थी वहा हसा की ईजा के पास अब ऐसी कोई चीज बची नही थी जिसे लेकर वह इठलाता। अब तो घर म एक फूटी तोली एक टूट गिलास एक अधफूटी थाली तथा सकडो छेदो वाले तवे के अलावा कुछ था ही नही। बिस्तर ऐसा जिसे हसा की ईजा के अलावा गरीब-से-गरीब भी शायद ही बिछाय। रही बात जेवर की, पहले तो हसा की ईजा के पास था ही क्या। फिर जो था भी वह हसा की फीस आदि म स्वाहा हो चुके थे। रही सही कसर उस दिन पूरी हो गयी थी जब उन्हे पता चला था परमा का दसवी के बोड का फाम रुक गया है। भला वे इस बात को कम सह पाती। वह तो हसा द्वारा निराश कर दिय जाने की कमी को परमा को हस देखकर पूरा करना चाहती थी। तभी तो उस दिन उन्होने अपन सुहाग की आखिरी निशानी गले की हसली बेचकर परमा की ईजा को पसे पकडाये थे।

जहा तक हसा क ईजा की स्थिति थी वह तो अब भी गाव के बाहर जमा हो आय तथा हसा के गाव आने स बेखबर थी। वह तो अभी तक तेरा लडका मर गया है शब्दो की मार से उभर नही पायी थी। इसी का तो

वारण था जहा व सागे रात गुनगुनी रही थी। वही अब उनकी एसी स्थिति थी कि जहा वे हसा को पुचकाराय और बनि वाली कहानी सुनान वाले पहले दिन का याद कर रही थी। वही इस प्रयागा के बीच ता कई बार उन्हे एसा तक लगता जस व इस समय काम स लौट रही है और उनके दरवाजा खोलत ही उनका हसा दरवाजे के पास औंधा सोया पडा ह या घुटना के बल खिसकत उनका हसा दरवाजे तक पहुच गया है और व उस बचाने दसा काम छोड उस पकड रही है। दूसरी ओर इन्ही क्षणा की हकीकत यह हा आयी थी कि गाव के लागा की भीड का लगभग चीरता-सा हसा उनस बोला था—ईजा

—कौन कौन परमा हसा की ईजा को अब भी विश्वास नही था।

—परमा नही हसा—अब तो हसा झल्ला उठा था। भला वह परमा का नाम कहा सह पाता ? वह आज के जमाने का हस जो था।

बस, अब क्या था हसा की ईजा की तद्रा पूरी तरह टूट आयी। भला अब अपनी हकीकत समझने म उन्हे क्या दर लगती। इसीलिए वह काप उठी। पर तभी जाने उनम इतनी स्फूर्ति कहा स आयी कि बिजली की-सी फुर्ती म बाहर आ परमा के पावो मे लिपट एसे सिसकिया भरने लगी जस अपने इस अभिनय भर स अपने अतर का उडेलत कह रही हो—बेटा मैं हसा को हस न बना सकी। तुझे मैं अपने मन का हस समझती थी। क्या एक मा के लिए हसा को बनाने मे क्या यह कम है कि उसके हसा के हस बनने की आस अभी मरी नही। जबकि पहले वे हमेशा मूक रहा करती थी।

फिर वही अंधेरा, वही, बिल्कुल वही जिससे उसे सख्त नफरत है। उसे वह क्षण भर के लिए भी नहीं देखना चाहता है। मगर देखता चला आ रहा है। कई बार तो वह इस अंधेरे से तंग आकर यहां तक सोचता है—दूर कहीं ऐसी जगह चला जाय, जहां अंधेरा दिन में तो अलग रात भी न हो। किंतु ऐसा स्थान है कहां ? ऐसी जगह है कहां ? जहां अंधेरा हो ही नहीं ? इस धरती पर तो अलग, शायद सारी सृष्टि में भी न हो।

वह जिस कमरे में रहता है, उसमें एक तरह से काफी अंधेरा है। कमरा संकरी गली के बीच है। वह भी निचली मंजिल का, जिसमें लाख प्रयत्न करने पर भी कभी धूप नहीं झांक पाती है। हां, गर्मियों में गली की उड़ती धूल बेझिझक कमरे में घुस आती है। कम आंख देखने वाला तो दिन में भी छोटी छोटी चीजें इधर नहीं देख पाता है। बदलियों के घिर आने पर तो अच्छा खासा देखने वाला भी यहां नहीं देख पाता है। कमरे की शक्ल भी अजीब तरह की है। यदि पृथ्वी की तरह इस कमरे को अंडाकार कहा जाय तो भी गलत नहीं। रोशनदान की जगह इसमें चार छेद दीवारों पर हैं। जिन्हें देख ऐसा लगता है—जब मकान बना होगा तब शायद मकान मालिक को रोशनदान का खयाल ही न रहा हो। बाद में किरायेदार के कई बार कहने पर ये मोटे से चार छेद गली की ओर वाली दीवार में किये गये हों। ये छेद भी एक तरह से अभी खुले ही हैं। आदमी तो अवश्य ही उन छेदों से अंदर घुस नहीं सकता था। सांप-कीड़े अंदर न घुस पायें, ऐसा सोच उनमें पक्की जाली लगायी गयी है। साथ ही पार्टीसन कराकर कमरे को दो हिस्सों में बांटा गया है। ताकि मकानों की तंगी के कारण कोई-न-कोई

किरायदार यहा आकर रहने लग। पार्टीशन करने पर कमरे काफी छाटे हा गय ह। वैसे अगला कमरा पिछले कमर का दुगुना है। पर उसम मुश्किल स तीन छोटी चारपाइया ही आ सकती ह। बडी ता शायद दो भी न आ सकें। पिछले कमर को उसन किचन बना रखा ह। अगल को वह बैठक सोन पढने आदि के लिए आवश्यकतानुसार सभी कामो म लाता है।

और दफ्तर दफ्तर की स्थिति उसके घर स गयी गुजरी है। घर म वह पत्नी पर रौब तो हाक सकता है पर दफ्तर म ? अलबत्ता उसक दफ्तर की नयी बिल्डिग है किंतु जिस कमर म वह बैठता है उसम अधेरा है। उधर भी निचली मजिल का कमरा होने के कारण व कमरे के बिल्कुल कोन म बठने के कारण जहा वह बठता है वहा काफी अधेरा है। पाच साल पहल जब उसका तबादला उस कमर म हुआ तब उसने सिरतोड प्रयत्न किया था कि वह खिडकी की पास वाली सीटो म स किसी म बैठे। पर उन सीटो पर आफीसर व दो असिस्टेंटा ने पहले से ही अपना कब्जा किया हुआ था। खिडकी क पास वाली नजदीकी सीटो पर चार सीनियर क्लक अपना नतिक अधिकार समझत थे। भला वे भी पीछे कैसे रहत। इसलिए बाकी बचे कमरे के तीन क्लक व एक दफ्तरी। उनकी पूछ क्स हो सकती थी। उन्ह तो बतायी सीटा पर ही बठना पडता था। इसी कारण हकीकत का पता चलत ही उसन अधिक प्रयत्न नही किया। चुपचाप कोने वाली सीट को ही स्वीकार कर लिया था।

इन्ही बातो का असर उस पर यह पडा कि वह सुबह-साझ घर पर नही रहता है। अधिकाश बाहर रहता है। चाहे काम हो या नही। हा, यदि वह कही म जा नही सकता है तो अपनी दफ्तर वाली सीट स। घर म बाहर निकल पहले-पहल वह खुले कमर की तलाश म घूमता रहता था। उसी तलाश म कइ बार वह अच्छे कमर दख भी चुका। पर अपनी जेब के कारण उन कमरा म रहने का इच्छा का छाड खीजकर पाक म आकर बठ जाता। सोचता अधेरा ता है पर चालीस रुपय म कमरा है कहा ? दो-सवा दा सौ म जा कमरे मिलत ह ठीक हात हुए भी हम जसा क लिए क्स ठीक हो सकत ह ? इतना किराया दकर व खायेंगे क्या ? यही वजह थी कि अब उसन कमर की तलाश बद कर दी थी। हा वह घर पर फिर भी नही रहता

था। विवश हो अत म उसे घर लौटना ही पडता था। ठीक एस ही जैस जहाज का पछी धरती की खोज करने म असफल हो पुन जहाज पर ही लौट आता है। घर न लौटने के अलावा वह जा भी कहा सकता है ? मगर दहलीज के पास पहुचते ही अधेरा देख उसका दम घुटने लगता था पुन भाग जाने को उसका जी करता है।

आज छुट्टी का दिन है। इतवार है। टेबल पर रखी घडी ग्यारह बजा रही है। वह आज सुबह म घर पर ही है। अब तक वह किताबें पढ रहा था। इसलिए नही कि वह घर पर रहना चाहता था बल्कि इसलिए कि वह पत्नी की शिकायत दूर करना चाहता है। अपने-आप तो बाहर चले जाते हैं। हम यही छोड देते ह इस काल-कोठरी म घुटन क लिए। आज की छुट्टी क दिन वह सारे दिन घर ही रहगा उसन पिछले इतवार को ही सोच लिया था। इस एक हफ्ते की परिधि म रानो ता पिछली वारदाता को भूल गयी। मगर वह नही भूला था। इसी कारण उसकी पत्नी उसक निर्णय स अनभिज्ञ-सी सुबह से अब तक कई बार उससे आग्रह कर चुकी थी—वैसे तो तुम कभी घर पर रहते ही नही। हम कही ले नही जाते। आज तो आप घर पर ही है, आज तो कही चलो। इस अधेरे कमरे स, इस काल-कोठरी से कुछ समय के लिए मुक्ति तो मिल जायगी । नन्ही-सी पाच वर्षीया बिटिया नीता भी कई बार मा की बाता का समर्थन कर चुकी थी—'चलो ना।"

लेकिन वह सुनी की अनसुनी किये जा रहा है। नीता कई बार रुआसी सूरत बनाती उठी थी। पर वह उसकी ओर तनिक भी ध्यान नही देता था। जब नीता जिद पर उतर आयी थी तो उसन उसे एक जोर का थप्पड जड दिया था। वह बिलबिला उठी थी। इसी पर रानो को काफी गुस्सा आया था। पर वह बोलती कुछ नही थी। खाना बनाना छोडकर उसे चुप कराने जा लगी थी। जब वह चुप ही नही हुई तो वह खीज उठी थी—बेटी, पत्थर की मूर्ति के सामने रोने से कभी लाभ नही होता है। हा लाभ की आशा अवश्य बधती है। पर इनके सामने रोने से तो वह भी नही। जाने ये किस धातु के बने है !

वह थाडा-सा सिर किताब पर से उठाकर रानो की ओर देखता है। उसकी आँखों म निराशा का तनाव बढ आता है। उसके जी म आता है कि पत्नी को बुरी तरह डाट द कि इस तरह की बकवास मत किया कर। पर कमर म छाय अधेरे को देखकर गहरी नि श्वास भरकर रह गया था। सोचता रह गया था—रानो सचमुच ठीक कह रही है। वह किसी ऐसी धातु का बना है जो न पिघलता है और न जिस पर अन्य धातुओ का प्रभाव ही पडता है। हो सकता है, पहले वह ऐसा न हो, पर जीवन के अधेरे न अवश्य ही उस किसी ऐसी ही धातु के रूप म बदल दिया है। अन्यथा

जबकि नीता निराश-सी कुछ देर बाद सेलन बाहर चली जाती है। जाते समय वह पलक उठाकर भी उसकी ओर नहीं देखती है। कुछ ऐस जस उस भय हो—उसका देखना इस बार पुल उसे मार न हिला दे। पर नीता की नजरें देख उसका दिमाग बोझिल हो आता है। वह पास ही से पकट उठा, सिगरट सुलगाता है। ऐश-ट्रे उठाकर पास ही रख लेता है ताकि उस राख झाडन म परेशानी न हो। छल्ले बनाता धुआ छत स टकराकर कमर म फलन लगता है। अधेरे के कारण वह धुआ उस नहीं दिखायी देता है जिसस अक्सर वह अपन जीवन की तुलना किया करता था—और उसका अत भी वह धुए के रूप म ही समझता था और फिर वह उसी धुए की जरद-से-जल्द आकाक्षा किया करता था।

—अब कब तक ऐस बैठे-बैठे सिगरेट फूकत रहोग? खाना बन गया है—रानो कोयले बुझान लगती है—अब पानी भी तो बद होन वाला है।

वह सिगरट का जोर स कश खीचता है। फिर सिगरेट ऐश-ट्रे म डाल, तौलिया उठा नहान चला जाता है। लकिन उसक विचारा का तनाव फिर भी कम नहीं होता। उसकी आखा के सामन वे क्षण घिर आते है जब रानो स उसकी शादी हुई थी। जब वह रानो क साथ एक सुखी जिदगी बितान के म जवाब सजोता था, जब लाख प्रयत्न करन पर भी उसे शहर म कमरा न मिल पाया था। तब इच्छा न होन हुए भी उसे इसी कमर म दिन बसर करन को सोचना पडा था जब कमरे म पाव रखते समय ही रानो न कहा था—क्या यही कमरा लिया है तुमन? मुझस तो इसम नहा रहा

जायेगा। वही दूसरे कमरे की तलाश करो।"

तब और अब में भी कितना अंतर! तब वे दो थे। अब उनके साथ नीता और अनिल हैं। उन दोनों के ही [illegible]। तब रानो किसी-न-किसी तरह रोज ही कमरा बदलने को कहती थी। पर अब वह कभी भी नहीं कहती है। बल्कि अब तंग आकर जब कभी वह कहीं दूसरा कमरा किराये पर लेने की बात करता है तो वह हमेशा मना करती है। बातों का रुख ही पलट देती है। इन बातों में जरा भी दिलचस्पी नहीं दिखाती है। शायद वह अब अच्छी तरह समझ चुकी हो—उसके पति-जैसे कम वेतन पाने वाले के लिए तो यह कमरा भी एक महल के समान है। एक अच्छे कमरे के सपने सजाने से अलग इसी में अपनी स्थिति संभाले रहना बड़ी बात है और या फिर उसने अपने-आपको इस अंडाकार कमरे में कुछ इस तरह खपा लिया हो कि अब उसे कहीं और जहां भला लगता ही न हो, कहीं अन्यत्र सुखी रहने की वह कल्पना भी नहीं कर सकती हो। क्योंकि अन्यत्र यदि चले भी जायें तो और बातें तो नहीं बदल सकती हैं।

पर अब रानो का यही मौन उसे अखरने लगा है। बल्कि कई बार तो अब वह यहां तक सोचता है—क्या हो गया है रानो को? अब तो वह बिल्कुल ही बदल गयी है। किसी बात के लिए जिद नहीं करती है न खाने के लिए न पहनने के लिए। जो कुछ लाकर रख दिया, पका [illegible], जो कुछ ला दिया, पहन लेती है। बस, और कुछ नहीं। क्या हो गया [illegible] को? इन्हीं विचारों में कई बार वह रानो के वर्तमान [illegible] अपनी पलकों में तुलना करता है कि जिस तरह अपमानों की [illegible] सुनने का धीरे धीरे वह आदी हो चुका है, हो सकता है, [illegible] उसकी पत्नी ने भी अपने को इसी कमरे में खपा लिया हो। [illegible] का ध्यान आते ही उसका माथा फिर झनझना उठता है। [illegible], इन सात-आठ वर्षों में उसकी आंखें काफी कमजोर हो [illegible] है। [illegible] आंखें [illegible] से कमजोर हो जायगी। कई बार तो [illegible] के बाद उसकी [illegible] के सामने सारी गली का [illegible] है। [illegible] मजदूरों-नाइयों आदि [illegible] बार मंदिर [illegible]

बार निश्चय किया—चाहे उसे कुछ भी करना पड़े पर वह यहाँ से हटकर ही दम लेगा। मगर [illegible] ।

मगर उसके विचार आते-जाते, व कमजोर होते व उन पत्थर सा हुआ अहसास कमरे में ही लौट आते थे। इसी कारण अब उसे जहाँ अधर में लटकता हुआ आती है यहीं उसका पैर पर जा टिका लगता और वह घर में बाहर रहता है जिसका रास्ता कुछ और ही अब लगाती है। फिर अड़ोस-पड़ोस की औरतों को दिखाकर ऊपर वाली मंजिल में रहनेवाली सक्सेना साहब की पत्नी थी। उसकी एक न एक अच्छी साड़ियां देख तो उसके मन में एक अजीब तरह की टीस उठती। रह रहकर उसकी आंखों के सामने नाचने लगते व फिर छिप जाते हैं जब वह भी सक्सेना की पत्नी की तरह रहा करती थी। कई बार इन बातों से उसका मन बुरी तरह उचट आता। नाचती पति से सपाट शब्दों में अपनी इच्छा को व्यक्त करती। चाहे वे कुछ भी करें वह अब यहां नहीं रहेगी। यदि तुम इंतजाम नहीं कर सकते तो मुझे मायके पहुंचा दो। मेरे मां बाप अभी भी मुझे बरदाश्त कर लेंगे। पर पति के चुपचाप विचारमग्न चेहरे को देख कुछ कह नहीं पाती। यह बात दूसरी थी कि पति के हर शब्द व हर व्यवहार में वह अब अपनी उपेक्षा अनुभव करती। कई बार तंग आकर सोचती—वह जिस कमरे में रहती है उसमें व जेल की कोठरी में क्या अंतर है? यद्यपि जेल की तरह यहां पहरा नहीं, वह बिना पहरे के ही इधर-उधर जा सकती है। पर यहां भी जिंदा रहने के लिए कैदियों की तरह रूखा-सूखा भोजन मिलता है और तो कुछ नहीं ।

वह अभी नहा रहा था। रानी विचारमग्न-सी रसोई में बैठी थी। उसके पास ही अनिल बैठा था। अभी-अभी उठा है सोकर। तभी तीन-चार छोटी छोटी गौरैया दहलीज के पास आ चहचहाने लगती है। वे कभी कुछ अंदर तक बढ़ आती हैं। फिर लौटकर दहलीज के पास रखे दो छोटे छोटे अधटूटे कनस्तरों में उगाये तुलसी के पौधों पर बैठ जाती है। रानी को उन पौधों के साथ जुड़ी बातें याद हो आती है, जब उसने पति के विरोध करने पर भी इस कमरे में आने के दस पंद्रह दिन बाद ये पौधे लगाये थे। तब

एक साथ लगाने पर लाख प्रयत्न करने पर भी, एक पौधा दिन-पर दिन काफी अच्छा हो आया था और दूसरा दिन-पर-दिन न तो सूख ही पाता था, न अच्छा ही होता था। उसी पौधे की याद के कारण वह पानी ही से लोटा उठाती है, तुलसी के पौधा में पानी भरने आगे बढ़ती है। गौरैये उड़कर ऊपर सक्सेना साहब के बरामदे की दीवाल पर रखे गमलों पर बैठ जाती है।

"चल, हमारे घर चल। मैं तुझे अपने गमने दिखाऊँगी।" सक्सेना साहब की लड़की के स्वर में एक अफसरी रौब था।

"ले आय, तो क्या हुआ! मेरे पापा भी मेरे लिए एक साथ बीस गमने ला देंगे।" नीता चिढ़कर कहती है। मगर सक्सेना साहब की लड़की उसका हाथ पकड़कर उसे अपने घर की ओर खींचती है। नीता उससे उम्र में छोटी तो नहीं पर दिखायी काफी छोटी देती है। इसलिए वह अपने को छुड़ाने का सिरतोड़ प्रयत्न करते हुए भी खिंचती चली जाती है।

रानो यह सब देख रही थी। तुलसी के पौधा में पानी देना भी भूल जाती है। उसके हाथ से लोटा नीचे गिर जाता है। एक झटके के साथ लोटा उठाने झुकती ही है कि चर चर की आवाज होती है। देखती है, धोती घुटनों के पास काफी फट आयी है। खीज उठती है नीता क्या मगड़ा कर रही है?"

नीता को सक्सेना साहब की लड़की छोड़ देती है। वह दौड़कर कमरे में आ जाती है। वह नेहा चुका है। सिर के बालों पर कंघी करता है। माता पिता दोनों की बात दया वह पूरी नहीं समझती है। धीरे-धीरे आकर उसके पाँव को पकड़ लेती है। कुछ ऐसे, जैसे कुछ समय पहले पड़ी मार को बिल्कुल ही भूल गयी हो। अब भरी आँखों से दोनों को देखती है। शायद अब पहली मार की याद हो आयी थी। पर दबे-दबे स्वर में कहती है पापा, मेरे लिए भी ला दो न कुछ गमले। नीता के पिता, उसके लिए एक साथ दस ले आय।"

पर न 'ना' कहता है न 'हाँ' ही। अंदर वाले कमरे में जा खूँटे के पास एक बैठ जाता है जैसे वह नीता की बात का उत्तर देने की आवश्यकता ही नहीं समझता हो। अंदर रानो भीतर परोसने जाती है। मगर नीता फिर

भी गमले लाने का आग्रह करती रहती है। किंतु वह इस पर भी कुछ नहीं बोलता है। खाना खाने लगता है। नीता गमले लाने की स्वीकृति लिए बिना खाना खाने से मना कर देता है। वह अंदर-ही-अंदर झुंझला उठता है। सोचता है—नीता के एक थप्पड़ मारे। वह—फिजूल में जिद कर रही है। अगर वे दस गमले ले आये तो क्या हुआ? उनकी आमदनी भी तो पहले से कई गुना ज्यादा है।—पर रानो के झुर्रीदार चेहरे का दर्द कुछ भी नहीं कह पाता। एकाएक उसे जैसे कुछ सूझ आता है बात टालने के लिए कहता है 'गमले तो मैं ला दूं। पर रखोगी कहां?"

कमरे में रखूंगी और कहां रखूंगी!' वह रुआंसी सूरत बनाते हुए कहती है।

उसके हाथ का कौर हाथ में ही रह जाता है मुंह का मुंह में ही। वह प्रश्न भरी आंखों से कभी नीता कभी पत्नी व कभी अनिल की ओर देखता ही रह जाता है। कभी देखता रह जाता है अपने दस-बाई-दस के कमरे को, जिसमें वह सामान रखने के विभिन्न तरीके अख्तियार करने पर भी किताबें रखने के लिए रैक की जगह न बना पाया था। उसे याद आता है—एक बार रानो ने भी कही थी ये बातें। तब उसे कितना गुस्सा आया था! तब उसे लगा था जैसे यह जानते हुए कमरे में तिल रखने के लिए भी जगह नहीं है। गमले लाकर रखने की बात केवल उस सिद्धांत के लिए कही जा रही है और कमरा बदलने की मांग को न मानने के कारण ही कही जा रही है। तब उसने झिड़ककर कहा था—रानो गमले व पौधे ही चाहती तो बस घर में जन्म लेती ताकि वैसी ही जगह तेरी शादी भी होती।

इन बातों को रानो चुपचाप सह गयी थी। इसके अलावा अन्य कोई चारा भी नहीं था। यद्यपि औरतों के स्वभाव के प्रतिकूल मायके पर आक्षेप सुन उसकी सारी देह में क्रोध के कारण कंपकंपी छूट आयी थी। उस क्षण उसकी पलकें गीली हो आयी थीं और उसकी आंखों के सामने घना अंधकार छा आया था। जिस अंधेरे में एक के बाद एक मायके की दिखलाए व क्षण धुंधले धुंधले होते चले जा रहे दिखायी दिये थे और दिखायी दिया था पिता का जीर्ण चेहरा जिस चेहरे में उसने एक बार भी चमक नहीं

देखी थी। यदि देखी थी तो एक खोज और असफलता। धुंधलेपन की गति इतनी तीव्र थी कि लगता था कि कुछ ही देर में उसके पिता का छोटा-सा घर, पांच भाई-बहनों से मिला परिवार, गांव का सारा माहौल व हमेशा ही बीमार रहने वाली मां सभी-के-सभी अदृश्य हो जायेंगे। फिर उसके सामने अंडाकार कमरा व पति के अलावा शेष कुछ भी नहीं होगा। मानो वह यही सब कुछ देखने के लिए पैदा हुई हो। इसके अलावा अच्छा देखना तो अलग, सोचना तक उसके लिए गुनाह हो। तब उसने सतृष्ण नेत्रों से पति को कुछ इस तरह देखा था जैसे वह अपने इस मूक अभिनय द्वारा कहना चाहती हो—'आप ठीक कह रहे हैं।' तभी उसने निश्चय किया था—'अब भविष्य में वह पति से किसी भी तरह का आग्रह नहीं करेगी। कोई भी बात नहीं कहेगी। उनकी ही तौर पर चलेगी। अपना सब कुछ भूल जायगी, सब कुछ।

पापा ला दो ना। मैं कहीं न-कहीं रख लूंगी। नीता पुनः जोर देती है।

जिद करती है, पौधा के लिए खुली जगह खुली हवा चाहिए।' वह कड़ककर कहता है।

"फिजूल में जिद न कर, खाना खा। रानो भी कड़क उठती है। गौर से पति की ओर देखती है। उसे लगता है जैसे उसके पति को ये बातें भली नहीं लग रही हैं।

'मम्मी, तू भी अजीब बात करती है।" नीता बीच में ही तुनक उठती है। उसे कल ही पढ़ाते समय पिता की कही बातें याद हो आती हैं। पिता की ओर देखते हुए कहती है 'पापा, समझाओ न मम्मी को। तुम्हीं ने तो कहा था—'आदमी हवा के बिना एक मिनट भी जिंदा नहीं रह सकता। जैसे इस कमरे में हम रहते हैं बस गमले भी रहेंगे। अगर इस कमरे में हवा नहीं तो हम कैसे जिंदा रहते हैं?

उसका माथा झनझना उठता है। आंखों में आंसू भर आते हैं। उसकी आंखों के सामने इन सात-आठ वर्षों का सारा अतीत खिंच आता है। सोचता है नीता ठीक ही कह रही है। जाने कैसे जीवित हैं हम इस अंडाकार कमरे में—जिसमें न हवा है और न प्रकाश ही। फिर रानो की ओर देखता

है पर अंधेरे क कारण उसे कुछ भी दिखायी नही दता। लकिन उस एहसास होता है जैस वह रो रही है और सिसकिया भर रही है। एकाएक उस लगता ह जसे उसके कमरे की सारी हवा सहसा निकल गयी है। अब उसके कमरे म जरा भी हवा नही है। हवा क अभाव के कारण उन सबका दम घुट रहा ह। व सभी छटपटा रह हैं। घबडाकर वह खाना छाडकर बाहर चला आता है।

रानो नीता क गालो पर जोर के दो चपत जड देती है। वह फिर जोर स रोने लगती है। उसके गालो पर दसो पतले-पतले निशान बिल्कुल नीले हो जात हैं। पर वह नीता की तनिक भी परवाह किये बिना गीली पलका से पति का देखती भर रह जाती है।

●●● एक और कालिदास

शायद अब उन्हें किसी ने कालिदास शब्द का नया अर्थ बता दिया था जो वे अपने को ऐसा कहते सुन मुस्कराते थे या गर्व का एहसास किया करते थे। वरना तो पहले उनसे किसी ने ऐसा कहा नहीं कि वे उसे मारने ऐसे उतर पड़ते थे जैसे कि वे शाखा पर बैठकर शाखा को काटने वाले कालिदास से भी खतरनाक हों। उनकी तो मारापीटी की कई वारदातें थीं। पर रसिका, सोवना तथा काली जेठड्या वाली तो ऐसी थीं जिन्होंने पूरे गांव को हिला दिया था। यह दूसरी बात थी कि गांव की बातें होने के कारण समय के साथ ये बातें आयी-गयी की बन आयी थीं। रसिका और सोवना के मामले में तो गांव ने उल्टा उन्हें ही जो फटकारा था—जब तुम्हें मालूम है कि ऐसा कहने पर वे ऐसा किया करते हैं तब तुमने ऐसा कहा ही क्या? जबकि काली जेठड्या वाली बात ऐसी थी जिसने पूरे गांव को उत्तेजित कर डाला था।

एक तो एक मर्द द्वारा एक औरत पर हाथ उठाने का मामला था। दूसरा उनका अपना कसूर भी कुछ नहीं था। वे तो उल्टा उन्हें डांट रही थीं जो उसे छेड़ रहे थे। वे तो कह रही थीं—शरम नहीं आती है रे तुम लोगों को जो उसे छेड़ रहे हो। वह अगर किसी को मार देगा तो सब कहेंगे उसने मार दिया। इस समय कोई नहीं देख रहा है कि ये उसे कालिदास

बस, उनकी यही तो फटकार उनके अपने लिए सिरदर्द बन आयी थी। केवल ने जाने क्या समझा कि उसने उनके ऐसा कहते-कहते तक न सिर्फ दो-तीन थप्पड़ उन्हें जड़ दिये, वरन् ऐसा धक्का दे डाला कि बेचारी बेहोश हो धड़ाम से नीचे गिर गयी। वह तो गांवों की भिड़ भिड़ तथा मार दिया, मार दिया सुन गांव के कई लोगों ने उन्हें छुड़ा दिया, वरना तो उन्होंने

काली जेडज्या का मार ही डालना था। पर जितना भी अब तक उन्होंने कर डाला था वही कम नहीं था। जेडज्या का होश नहीं लौट रहा था। जेडज्या के तीनों बेटे उन्हें बरीनाग अस्पताल ले जाने को उतर आये थे। केवल की ईजा के रोने-पीटने तथा पाँव पकड़ने तक का उन पर असर नहीं पड़ा था। वह तो काली जेडज्या को ही पानी के छींटों से होश लौट आया तथा अपनी बेचारी बहन के बेटे को बचाने उन्होंने यह कहने से इनकार कर दिया कि उन्हें केवल ने मारा है। वरना तो उनके बेटे फिर भी उन्हें अस्पताल ले जाने पर आमादा थे। तभी तो गाँव के लोगों ने ऐसों की एक लिस्ट तैयार की थी जो उन्हें छेड़ा करते थे। केशवा दामू रतन को तभी से तो आगाह किया था—आइंदा से ऐसा न किया करें

मुझे आज भी याद है वह दिन जब उन्होंने काली जेडज्या को मारा था। तब गाँव के लोग बीच-बचाव कराने की बातें कर रहे थे। मैं सोच रहा था कि गाँव के उन लोगों के बारे में सोच रहा था जो अब तक उन्हें परेशान किया करते थे। मुझे केवल में और उन्हें परेशान करने वालों में जरा भी अंतर नहीं दिखा था। अंतर बस यह भर था कि यदि वे स्कूल नहीं पढ़ पाये थे तो

तो दूसरे स्कूल जाने पर भी स्कूल ठीक से नहीं पढ़ते थे। कुछ ऐसे थे जो ठीक केवल की तरह बुढ़िया गये थे। तभी तो इन सारे सोचों के बीच मुझे लगा था इनकी यह स्थिति हो जाने के पीछे इनकी माँ जिम्मेदार है। उनकी माँ का तो सोच था—बेटे को पढ़ा लिखाकर क्या करना। खेती उनके पास गाँव में सबसे ज्यादा है। उनके बेटे के लायक जमीन से पैदा हो ही जायगा। नमक तेल के लायक जदमानी में निकल ही आयगा। पढ़ाने पर तो खतरा यह तक है कि गाँव के दूसरे बेटों की तरह वह उनसे दूर चला जाय। उनका यही तो सोच था जिसके कारण उन्होंने उसे तब तक स्कूल नहीं भेजा, जबकि एक दिन मेरे पिता ने उनसे यह नहीं कहा—देख अभी तू लाड-प्यार में उसे बिगाड़ रही है। आगे चलकर जब दूसरों के बेटे पढ़ लिखकर बड़े बनेंगे और तेरा बेटा दूसरों का बोझ उठाने लायक रहेगा तब आयगा तेरे को होश। देख लेना ऐसे में ... बेटा ... कालिदास नहीं बना तो मेरा नाम बदल।

पिता जी की यही बात मैंने भी सुनी थी। उनकी बात ने मेरे सामने अनेक प्रश्न खड़े कर दिये थे—उद्द उद्द और कालिदास क्या हुआ? काफी देर तक मैं यही सोचता रहा था। मौका मिलने पर मैंने पिता जी से पूछी थी उद्द उद्द वाली बात। इस पर उन्होंने बतायी थी वह बात जिसके अनुसार शाखा पर बैठकर शाखा काटने वाले कालिदास की शादी विद्योत्तमा से कैसे हुई थी। तब मुझे मालूम नहीं था कि उद्द उद्द करने वाले ने ही बाद में 'अभिज्ञान शाकुंतल' और 'रघुवंश' की रचना की थी। अन्यथा तो मैं उनसे उसी समय वैसी ही जिरह कर डालता जैसी मैंने पिता जी से गंगदत्त मेढक और प्रियदर्शी साँप की कहानी सुनाने पर की थी। मैंने तो उस कहानी को सुनते-सुनते पिता जी से कहा था—आप मुझे तो यह सुना रहे हैं कि गंगदत्त मेढक अपने दुश्मन मेढकों को मरवाने जिस प्रियदर्शन साँप को कुएँ पर ले आया उसने बाद में गंगदत्त के ही परिवार को खाना शुरू कर दिया। तब आप जमीन के छोटे से टुकड़े के झगड़े के पीछे चाचा को पिटवाने ...सिंह से बातें क्यों कर रहे हैं?

जबकि अब मुझे केवल की बढ़ती उम्र की बातों और अभिज्ञान शाकुंतल वाले कालिदास के बारे में सोचते-सोचते लगता है—क्या यह कालिदास भी ऐसी ही बात तो करने वाला नहीं था जैसा कि केवल? क्योंकि शादी केवल की तय हो पाये या नहीं, पर होने वाले ससुर से दहेज की उनकी माँग थी—एक हारमोनियम, एक तबला, दो दरियाँ तथा एक बाजे वाला चिमटा। वह इसलिए नहीं कि इनकी उनको जरूरत थी, बल्कि इसलिए कि गाँव में किसी के घर कामकाज होने पर ये चीजें गाँव के लोगों को दूसरे गाँवों से माँगनी पड़ती थीं। वे नहीं चाहते थे कि उनके गाँव के लोगों को माँगने दूसरे गाँव जाना पड़े। हालांकि इंसानी दृष्टि से उनकी ये बातें भी वैसी ही थीं जैसी बातें वे भरे में अक्सर किया करते थे। वे तो मूड में कई बार यहाँ तक कहा करते थे—दुनिया में जो भी बुरे काम आदमी करता है वह आदमी स्वयं करता है। भला काम तो यदि आदमी भूले भटके करता भी है तो वह उससे सिर्फ अनादी ताकत करवाती है।

पर गाँव के लड़कों के लिए उनकी इन बातों की क्या कीमत थी! उनके लिए तो उनके दहेज की बात और घटा-घटो नदादवो और पच-

चूली आदि वर्षों ने पहाड़ा को उनका देखना महत्त्वपूर्ण था। रही-सही कसर गाव के उस परस्त न पूरी कर दी जो अपने जमाने म लगभग केवल से ही थे। बल्कि बचन म दो कदम आग थे। केवल तो छेड़न पर ही दूसरा को मारने दौड़ता था। व तो बेमतलब भी दूसरा को मार दिया करत थे। पर आज व अपनी हकीकत का भूल गय थे। बुढ़ापे का फायदा उठा उन्होन झूठमूठ म केवल की शादी की बाते चलायी थी। साथ ही केवल का फोटो मागने वाला पत्र केवल को दिखाया था। इसी स ता उन्होन केवल क व पोज मदन के कमरा म खिचवाय थे जिसम वे अच्छी खासी दह के बावजूद काटू न बनाय गय थे। उनम उनकी एक मूछ कोयले की कालिख से बनायी गयी थी। दूसरी ओर की मूछ के थोड़े-बहुत उगे बालो को उस्तरे से पूरी तरह साफ किया गया था। साहब बनाने के चक्कर म उन्ह एक टोप और एक कोट पहनाया गया था।

मुझे ता उनक य पोज विशेष अथ म दिखाय गये थ। मैं उन्ह समझदार जो मानता था। उनके पोजा को देख मेरी आखा के सामने वे क्षण उभर आय जब काफी बड़ी उम्र म आ, क ख सीखत केवल को छोट छोटे बच्चे छेड़ा करत थे। ऊपर से रही सही कसर उसके उस टीचर न पूरी कर दी जिसन पहले तो इन्ह एक दिन बेहद पीटा। फिर इन्ह भरे क्लास कालिदास घोषित किया कि दो तीन दिन में ही अदर सारे स्कूल के बच्चे इन्ह कालिदास कहन लगे थे। नतीजा यह कि इन्होन फिर स्कूल ही जाना छोड दिया। तभी तो उनक पोजा को देख मुझे लगा था जसे सामन बरीनाग तक फैले जगल म कोई आदमी इस समय भी शाखा पर बठकर शाखा को काट रहा है। क्योकि दसवी तक पहुचत-पहुचत पिता जी की बदौलत कालिदास के बारे म मुझे काफी कुछ पता चल चुका था। इसलिए मैं तब केवल के बारे म कई दिना तक सोचता-सोचता रह गया था। मैं यह भी समझ गया था कि कालिदास सुनत ही य सिफ यह अथ लगाते हैं—देख केवल! अब तर को कोई लड़की नही देगा। इसी के साथ उनक बारे म सोचत-सोचत मुझे यह भी लगने लगा था कि कालिदास का तो विद्योत्तमा दिलान वाल पडित मिल आय थे। इन व भी नही मिलेंगे। इस समय कालिदास को तो ऐसे पडित मिल आय है जिन्होंने इनकी शादी की उम्मीद को ही लगभग-लगभग खत्म कर

दिया है। इन पोजों का जो भी देखेगा या इनकी बातें जा भी सुनेगा वह इनके बार म क्या सोचेगा ?

मेरी यह आशका वास्तव मे बटन समय के बीच सही हो आयी। इनके साथ के अन्य दो-दो तीन तीन बच्चो के पिता हो आय। इनकी शादी नही हो पायी। इनका भी उन पर असर यह कि वे जिस किसी स अगल दस-पद्रह दिनो मे अपनी शादी होने की बात किया करत थे। चाहे शादी की बातें चल भी न रही हो। उनकी इस हालत के पीछे भी उनकी ही मा जिम्मेदार थी। डनोली के पत होने के कारण तथा अपनी जमीन के बल प वे अपने सवधा के पत, पाडे तथा जोशी की अच्छी लडकी चाहती थी। अच्छी लडकी का अच्छा पिता उन्ह कौन अपनी लडकी दता। यह तो कोई मजबूर ही ऐसा कर सकता था। फिर जब डनोली के पतपन का उनका सपना टूटा तब तक समय आग निकल गया था। अब तो थोडे कम सबधो म भी बातें शुरू हाती तो अगला यही सोचता—पढे लिखे नौकरी वाले की इतनी उम्र तक शादी न होने की बात समझ म आती है गाव वाले पर के मामले मे अवश्य कुछ-न-कुछ मामला है। नतीजा यह कि उनकी बात जितनी जुगाड से शुरू होती उससे कही तजी से खत्म हो जाती।

अलबत्ता इस बार मे विचित्र बात यह थी कि जाकी ईजा तो उनकी शादी की आस छोड चुकी थी जिस किसी के सामने अब मा तो रोने लगती थी या बटे की इस दशा के पीछे जिम्मेदारी अपने पर थोपते हुए अपने को कोसने लगती थी। पर काली जेडज्या थी कि हिम्मत हारी हुई नहीं थी। अक्सर कहा करती थी—अरे यहा तो केवल म गय—बीतो की अब तक शादिया होती रही है क्या केशवा की शादी नही हुई जो खुद निरक्षर तो है ही, साथ ही गरीब भी ? क्या रतन की शादी नही हुई जो बदरूपा है, वह कितना पढा लिखा था ? यह तो जरा जमाना ही ऐसा आ गया जो लडको लडकियो को देखने का रिवाज हो आया, वरना हमार जमान म अपनी होने वाली को किसने देखा किसा अपने होने वाला का देखा ? यह तो इसकी भी शादी हो जाती अगर इसकी मा मेरी बात मानती। अपनी जमीन और अपने पतपने का इसे नाज था। और ऐसा

वाप होता है जो जमीन का लडकी दे ? ग्या का तो गरीब ही देता है अपनी लडकी। गरीब भी कसी गरीबी म जिसम लडकी का हाथ पीला करना भी दूभर हो। क्या होता अगर थोडे कम सबधो म इसकी शादी हो जाती! बहू-बेट और पान-पातिया वाली तो होती

शायद यही कारण था कि हर दो-तीन महीनो बाद कोई न-कोई रिश्ता ले, वे फिर-फिर केवल की शादी की उम्मीद बधा देती थी। उनके इन रिश्तों का अब असर यह था कि केवल अब उनके उठ कहने पर उठने और बैठ कहने पर बैठने थे। पता नही ऐसा करके व अपने द्वारा काली जेडय्या को मारने का पछतावा किया करते थे या वे यह समझ चुके थे कि गाव म एकमात्र व ही ऐसी है जो उनके लिए विद्योत्तमा का खोज सकती हैं।

सचमुच यह भी आश्चय की बात थी कि उनकी विद्योत्तमा को उन्होंने ही खोजा। इस बात का पता मुझे तब चला जब एक माह गाव का रतन मुझे बुलाने अम्माला आया। वह वही रतन था जिसने उनका झाडू न बनाकर फाटा त्रिपान म सबसे बडी भूमिका निभायी थी। उसी न मुझे बताया कि केवल की शादी काली जेडय्या न पक्की कर डाली है। परसो उनकी शादी म शरीक होने तुझे बुलाया है

मैं तो इस समाचार का सुन मारे खुशी के उछल पडा था। खासकर इसलिए कि जिसने मुझे चिढाने हेतु उनके कई न-माज दिखाये थे वही आज मेरे सामने इस समाचार के साथ खडा था। ऊपर से वह मेरे घर की चीजों को ऐसे देख रहा था जैसे कि उसने मेरे जस साधारण घर की भी चीजें देखी न हो। वैसे भी केवल व उसम अतर यह था कि वह जैसे तैसे मास्टरो की बदौलत सात तक पास हो गया था। आठवी म उस पास कराना मास्टरो के भी बस की बात नही थी। यह अलग बात थी कि वह काली जेडय्या द्वारा केवल की शादी तय करने की बात को ऐसे सुना रहा था जस कि वह इशारो-ही इशारो म कहना चाहता हो—उन्होंने एसे पागल की शादी तय करवाकर गलत काम किया है। क्योंकि उसने बताया था—वह तो उन्हान केवल का लडकी के पिता को गाव से बहुत दूर दिखाया। वरना यदि वह एक बार गाव आकर उन्हे देखता तो शायद ही हा करता।

इसके अलावा उसने केवल और केवल के होने वाले ससुर के प्रश्नोत्तरों को ऐसे सुनाया जैसे कि वे कालिदास और विद्योत्तमा के प्रश्नोत्तरों से कम न हों। बकौल उसके केवल से उसके होने वाले ससुर का पहला प्रश्न था—'आपके पास कितनी जमीन है?"

भला इस प्रश्न के उत्तर में केवल कैसे मार खाता। उसे तो अपनी जमीन तो अलग, पूरे गांव के लोगों की जमीन का पता था कि किसके पास कितनी रकबी जमीन है, कितनी किसके पास बंजर जमीन है, कितनी किसके पास मितवाल जमीन है। इसीलिए केवल ने इस छोटे से प्रश्न के जवाब में यह जतला दिया कि उसे गांव की एक-एक बात की जानकारी है। इसके बाद उनसे दूसरा प्रश्न पूछा गया था— 'तुम्हारा गांव में अपना कौन है?'

'मेरा गांव में अपना कोई नहीं है।' केवल का उत्तर था। इस उत्तर की रही-सही कसर काली जेठज्या ने पूरी कर दी थी—भला इसका अपना ही कोई होता तो क्या इसकी शादी अब तक नहीं होती? इसकी विधवा मां इसकी शादी कैसे ठहराती? इसके लिए तो मर्द चाहिए। अब तुम्हीं देखो क्या कमी है इसमें। अच्छी खासी देह है। अच्छी खासी समझ है। नासमझ विधवा का बेटा हुआ। वरना तो यह भी पढ़ा लिखा होता। इसी कारण उनसे तीसरा प्रश्न पूछा गया था—'केवल, और बात तो छोड़ो, तुम यह बताओ, तुम आगे क्या करना चाहते हो?'

आदमी दुनिया में अपने आप करता ही क्या है? वह तो वही करता है जो ऊपर वाला उससे कराता है।" उनका उत्तर था। उनके इसी उत्तर को सुन भावी विद्योत्तमा के पिता ने हामी भरी थी। तभी तो तब रतन की बातें सुन मैं और मेरी पत्नी दोनों हंसते-हंसते लोटपोट हो गए थे। मैं तो तब यही सोचता सोचता रह गया था—क्या केवल के उत्तरों के पीछे उस माटी का असर था जहां कालिदास ने साधना की थी या यह केवल की अपनी निजी सूझ थी? रतन अब मुझसे और बातें कर रहा था। पर मैं सिर्फ केवल के बारे में सोच रहा था। खाना खाकर सोते-सोते तक तो मेरी यह स्थिति हो आयी थी कि जैसे केवल और काली जेठज्या टकटकी बांधे मेरी बाट जोह रहे हैं।

ज्र मेरन म घुनिअप की रमम म मुताबिर रि गात्रम्य   रि गात्रम्य शुरू हा आया था। मगर मैं था कि मुकुट बांधे नवल के पास खड़ा हारा भी रग नहीं था। मैं यग था जहां नवल घटा घटा ऊनी ऊंची बनारसवद पगड़िया का दगा नरा थ। गया न। रि मन मगा ही यह स्थिति थी। न्म मजरी यग्गी स्थिति थी। उाके अलावा मारे बारातिया के हाथ पाव फूले हुए थ।   हम नग बात का जग भी विश्वास नही था कि औरता और गालियां की छड़छानी (था। नवल गयम बरन मारगा। उग तो पन शिना गगा गुस्सा आग लगा था कि गुस्स की स्थिति न उह सभालना कठिन हो आता था। ऊपर म गाव की दुकान म हम पता चल चुका था कि लड़की क पिता रो रेवल न अमा ग्रग्ण हान का पता लग चुका है। दुकानदार न साथ पिताने पिलान उसन दमा यात पूछ डाली थी। अलबत्ता उसन हम यह भी बता दिया था कि बचारी की दा पटिया शादी क छ महीना क अदर ही विधवा हा आयी। वरना व एमा वर थाडे ही अपनी लडकी के लिए ढूढन। यह ता दर्जा आठ पास है। हा उसका बाया हाथ अवश्य थाडा कमजार है। इसीलिए हम परशान थ कि किसी भी ओर स गडबड कर दन पर हम बात कैस निभायेंगे। नवल से खतरा था कि गुस्से म आकर यह कह दें—एमी ही रह गयी क्या मेरे लिए ? लडकी वाला के मना कर दन पर खतरा था कि गुस्सा आ जान की स्थिति म हम नवल का कैसे सभालेंगे।

वसे उनकी बारात मे उनकी उम्र का एक मैं था। बाकी ता सार के सार सात-आठ बुजुग थे। एसा इसलिए कि कम उम्र के लोगो के बाराती हाने की स्थिति म बचकानी बाता के हा आन का खतरा था। वह ता मेरे कहने पर केवल न बडी बारात की जिद छोड दी, वरना ता वे अपनी बारात म पूरे गाव का ले जाना चाहत थे। वे इस बात को समझे नहीं थे, पूरे गाव का ल जाने पर वे लाग भी बाराती बन जायेंगे जा अभी तक उनके काटू की पोजा को छाती से लगाये हुए थे। इससे ता यह तक खतरा था कि कहीं काली जेंडव्या का किया कराया चौपट न हो जाय। इसीलिए उनकी बात का मैंने तीव्र विराध किया था। मेरी बात वे मान भी गय। मेरी बातें अक्सर मान भी जात थे। फिर उनके बारात की सबसे बडी समस्या यह भी थी कि पहल ता वलिष्ठ दह के कारण उनका भोजन ही

अच्छा था। ऊपर से उनको खाने मे देर लगती थी। पंक्ति मे बैठकर दूसरे खाने वालो के लिए वे हमेशा सिरदर्द रहा करते थे। पंक्ति म एक के भी खाते रहने की स्थिति म दूसरे उठ जो नही सकते थे। इसके बारे म भी मैंने तरकीब निकाली थी। वे आज के दिन उतनी ही देर तक खाना खायेंगे जब तक कि खाना खाते-खाते मेरा बाया हाथ ऊपर न उठ आये यानी कि केवल को अच्छी तरह समझाया गया था कि आज क दिन भूखा रहकर उन्हे जिंदगी भर खिलाने वाली मिलने वाली है।

इधर अब धुलिअर्घ के शास्त्राथ जारी पर थे। पहले तो हमारे ही पडित जी बनारस के शास्त्री थे। ऊपर से लडकी वालो का पडित और तेज निकल आया। वे दोनो एक-दूसरे को नीचा दिखाने पर उतर आये। जबकि हम बारातियो की स्थिति यह थी कि अदरूनी घबराहट के कारण हम सब एक-दूसरे का मुह ताक रहे थे। सतोष की बात कि हम लोगो के उतरे चेहरो का अर्थ लडकी वालो ने सारे दिन की दुर्गम पर्वतीय यात्रा का लगाया। पूरे अट्ठारह मील का पहाडी रास्ता था। इस पर भी चार मील की तो एक ऐसी चढाई कि उसे पार करने म कई बूढो के हाथ-पाव फूल आये थे। फिर मेरी तो स्थिति और भी खराब थी। मुझे न सिर्फ उनकी शादी की खुशी जाहिर करनी पड रही थी। वरन लडकियो और औरतो की छेडखानियो का अकेले मुझे जवाब देना पड रहा था। पर शुक्र कि धुलिअर्घ की रस्म तो पूरी हो ही आयी। साथ ही मेरे द्वारा बाया हाथ उठाते ही केवल ने खाना सचमुच म ही छोड दिया। हालाकि हमम सबसे सयाने रघुवर चाचा गलती से यह कह ही बैठे—'केवल आज के दिन तो छककर खाना खाते है।"

इसलिए उन्हे खाना न खाते देख हम सब फूले न समाये थे। हमारी नजरो म अब हमने आधा युद्ध जीत लिया था। तभी तो खाना खाकर मैंने केवल के ससुर जी के मकान और उनके गाव का पूरे सतोष से देखा था। उनका मकान गैसो की रोशनी म आस-पास के अन्य मकानो की तुलना मे अच्छा घर था। सयोगवश कन्यादान की रस्म भी खाना खाने के तुरत बाद शुरू होनी थी। इसलिए हम अब कन्यादान की तयारी मे जुट आये। पर कन्यादान के लिए उनकी विद्योत्तमा को लाना ही था कि मेरा तो

माया ही झनझना उठा। उसकी मा की पसर्दें गोनी थी। पर उसकी ही क्या सानी अन्य सभी औरतो की यही स्थिति थी। उनकी पत्नी न ता यह तक ध्यान मे आया था कि कही केवल की असलियत का पता ता नहीं चल आया है। छोटी-सी रिवाजदारियो के कारण ऐसा पता लग ही आता था। पर यहा यह बात नही थी। यहा तो दुकानदार की सूचना वाली बात थी। उन्हें अपनी दो बिटियाओ के कन्यादानो की याद हो आयी थी। ऐसा या नतीजा था कि कन्यादान शुरू होने तक तो मुझे ऐसा लगने लगा जैसे वाङ्‌ मुझसे कह रहा है—यही तो वे आसू हैं जिनकी वजह से तुम्हारे केवल का वे अपनी लडकी दे रहे हैं वरना तो वे भी अपनी लडकी नही देते। दुख और मजबूरी मे ही तो आदमी ऐसा करता है। यह अलग बात है कि धरती के लोग न तो तब ही कालिदास की उद्‌-उद्‌ की असलियत को समझे और न आज। दुनिया ने कालिदासों और वाल्मीकियो के दद का ममत्व की खालिस की ही बच है? भाई ऐसा कौन-सा युग रहा है जब आम आदमी और सभ्रातो की भाषा म अतर नही रहा है? उस समय क्या आम आदमी संस्कृत बोलता था? वह तो उस समय उद्‌ उद्‌ वाली पाली ही बोलता था। आम आदमी का बेटा सभ्रातो की भाषा म उद्‌ उद्‌ कब बोल सका ह? यही तो है उसका अभाग। वरना धरती म ऐसा कौन प्राणी है जो मृत्यु से डरता नही है? मत्यु म तो स्वय काल तक डरता है। *क्या तुमने कोई ऐसा पागल देखा है जो जलती आग या चलती बस तथा* रेल के आग कूद पड़े? ऐसा तो सिर्फ जिंदगी से हारा हुआ आदमी करता है। पागल नही

इतना तो क्या, धीरे धीरे तो मेरी यह स्थिति हो आयी कि केवल की शादी की रश्म का भागीदार होते हुए मैं वहा नही था। उधर शादी की रश्म के फेरे तक हो जाय थ। इधर मैं केशव रतन तथा दाधू की यादो म उलझ गया था। रही-सही कसर केवल के ससुराल के उस नथुवा न पूरी कर दी जिसे लोग केवल की ही तरह छेड रहे थे। उसके कारण तो मुझे यहा तक लगने लगा जैसे केवल कन्यादान की रश्मो के बीच उसे बीच-बीच मे देखकर मुझसे कहने लगा है—अरे तू अभी भी नही समझा कि कालिदास शाखा पर बैठकर शाखा का काटने वाला आदमी नही था। अगर वह ऐसा

ही आदमी होता तो वह ठीक उतनी ही देर मौनी कसे रहा जितनी दर तक विद्योत्तमा उसकी अपनी नही हो आयी ? हकीकत यह थी कि वह पागल नही था। वह तो ऐसा आम आदमी था जिसे यदि विद्योत्तमा जसी ठोकर लग आये तो वह राम के पदा होन से पहले ही राम की सरचना वाल्मीकि की तरह कर डाले। गरीब का तो हर बेटा कालिदास हुआ करता है। मगर सिफ ठोकर भर की हुआ करती है। यह अलग बात है कि विद्योत्तमा जसी ठोकरें कभी कभी या विरलो को ही लग पाती है

आज केवल की शादी को हुए पद्रह वष हो आये ह। इन वर्षो मे वे भले ही 'अभिज्ञान शाकुतल' जैसा कोई बडा काम तो कर नही पाये पर वे इतने तो फिर भी काबिल हो ही आये थे कि दर्जा पाच तक अपने दो बच्चो का हिसाब व हिंदी आदि पढा सकें। व तो अब अपने बच्चो के साथ ऐसे लग रहते थे जसे अपना नाम लिखने और पढने वाले साक्षरो को कोसो पीछे छोड चुके हो तथा वे यह समझ गये हो कि उद्भट्ट-उद्भट्ट से उद्भट्ट-उद्भट्ट कहने लायक भले ही वे न बन पायें, पर बच्चो को ऐसा कैसे बनाया जा सकता है, वे अच्छी तरह जान चुके हैं। इसीलिए मैं जब भी उन्हें देखता था मेरे सामने प्रश्न खडा हो आता था—यदि वे आज के नये कालिदास हैं तो उनकी वह विद्योत्तमा कैसी है जिसने इन्हें बिना ठोकर मारे ही इतना बदल दिया ?

●●● भूचाल

यकीन मानिए, यह कहानी 'भूचाल' वही कहानी है जिसे मैं अठारह साल पहले एक रात पूरी करने बैठा था। मेरे साथ तब एक अजीब हादसा गुजरा। उसके बाद मैं इस कहानी को अब तक भी पूरा नहीं कर पाया। हां, जब भी पुरानी कहानियों की पांडुलिपियों के बीच मैं इस कहानी को देखता, दुबारा पूरा करने का लालच हो जाता। मगर जैसे ही इसको पूरा करने का मूड बनाने का प्रयास करता, मैं अंदर-ही-अंदर कांप उठता। हमेशा लगता, जैसे भूचाल का जलजला अब आया... अब आया तथा ऊपर से एक दीवार मेरे ऊपर आ गिरी। रह रहकर आंखों के सामने अठारह साल पहले की वह रात खिंच जाती। उस रात सिगरेट का पूरा काटा रख तथा तेज चाय का डोज चढ़ा मैं अपने बिस्तर में चला गया। विचारों के तानेबाने के बीच उन क्षणों की कल्पना कर रहा था कि जमीन के अंदर के लावे या आग पर पानी एकाएक गिर पड़े... क्योंकि लोगों का विश्वास है कि भूचाल इसी कारण आता है। लोगों का यह भी कहना है कि धरती के अंदर की पैदा हुई ऐसे क्षणों की गैस धरती के अंदर के बल्टों के जरिये पास होकर समुद्र में गिर जाय तो ठीक है वरना यह जमीन को तोड़कर बाहर निकलती है। तब उस रात मैं अभी इन्हीं विचारों में गोते लगा रहा था कि सचमुच ही भूचाल आ गया। धड़ धड़ धड़ाम की बेहद भयानक आवाज से धरती तब कांप उठी थी। मगर मैं पहले तो एक दो पल यही निश्चय नहीं कर पाया कि यह मेरी कल्पना का परिणाम है या हकीकत है? पर तभी चारों ओर 'भूचाल भूचाल' की चीत्कार तथा सहसा बिजली के गुल हो जाने पर ही मैं भागा था बाहर की ओर। मूसलाधार बारिश हो रही थी। फिर लौटकर घरों में

जाने का साहस किसी म नही था। उस रात तब दिल्ली नगरी के लोग पहले झटके को भूल अभी बिस्तर पर ठीक तरह से लेट भी नही पाये थे कि दुबारा पहले जैसा ही झटका आया था। इतना ही नही उस रात तब जहा थोडी थोडी देर बाद पाच छह हल्के झटके आय थे, वही उसके बाद दिल्ली पूर दो महीने तक लगातार भूचाल के झटके महसूस करती रही थी।

इस अजीब हादसे के बाद जहा मैं इस कहानी का दुबारा लिखने का साहस नही बटार पाया वही उस भयावनी रात के बाद मैं एक रात भी सो नही सका। हर क्षण, हर पल एक अजीब से मूड मे रहता। हमेशा इसी प्रयास म रहता, ऐसी वस्तु खोज निकालू जिससे भूचाल की पूव सूचना दुनिया का दे सकू। मगर लाख प्रयत्न के बावजूद मैं ऐसा नही कर पाया। यह बात दूसरी रही कि इस प्रयास के कारण अब मैं सारी दुनिया मे इधर-उधर भटकता फिरता हू। यह भी एक विचित्र सयोग होता है कि जब कभी दुनिया के किसी हिस्से म भूचाल आता है, भूचाल आने के क्षण हमेशा मैं वही होता हू। तब एसे क्षणो मे मेरी दशा बडी विचित्र हो जाती है। क्योकि एक ओर तो अपनी असफलता के प्रति दुखी होता हू, दूसरी ओर इस अथक प्रयास के बावजूद भूचाल आने के इतने कम समय पहले पता चलता है कि चाहते हुए हर बार कुछ नही कर पाता। भला दा-तीन मिनट म किया भी क्या जा सकता है? वह भी पता इसलिए चल पाता है कि जब भी सडका के आवारा कुत्ता को एक निश्चित दिशा की ओर मुह कर तीखे स्वर म भौकते हुए पाता ता घबरा उठता।

इतना ही नही, तब उस क्षणा चूहा को खोजता। लगभग सार चूहे एक साथ घबराय बिलो से निकलकर खुली जगहो की ओर दौडत हात। तब मुझे याद आना कुत्ता के साथ मुर्गे व मुर्गिया की लगातार बाग। तब ऐसे क्षणा किसी भी कुत्ते को भौक्त देखकर मेरा माथा उसके पावा की ओर जा झुकता है वही मेरा जी आत्मग्लानि से भर जाता। एक ओर समाज इन्हे आवारा और हानिकारक समझ जहर दे तडफा-तडफाकर या गोली दागकर मौत के घाट उतारता है दूसरी ओर तब मेरा जी चाहता कुत्तो के प्रति आभार प्रकट करू। मगर होता यह कि मुझे कुत्ता नफरत भरी आखो से देखता हुआ लगता है और इशारा-ही इशारो मे ऐसे लगता जसे कहता

चाहता हो—मियां भगवान के नाम पर रहम करो ! जानवर होने के कारण लोग मेरे भौंकने का अर्थ समझ नहीं पा रहे हैं। तुम तो जरा जल्दी करो। चिल्लाओ भूचाल भूचाल ताकि आस-पास के दरवाजे भले ही सुरक्षित न रह पायें कम से कम इन दरवाजों के अंदर रहने वाले वे हाथ तो सुरक्षित रह जायें जिनके बल पर हम यह आशा तो सजाए रख सकें कि कभी ये हाथ ऐसे ही दरवाजे फिर बना डालेंगे जिनके टुकड़ों से हम पला करते थे।

यकीन मानिए ऐसा एक बार नहीं लगभग हर बार ही होता। तब आवारा कुत्तों द्वारा कराये गये कर्तव्य-बोध के कारण मैं भूचाल भूचाल चीखता चिल्लाता कुछ ही क्षणों में सड़कों सड़कों, गलियों गलियों दौड़ता हूं। मगर अफसोस कि मेरी चीख सुन भले ही लोग खिड़की खोल बाहर झांक लेते मुझे पागल समझ मेरी चीख भरी पूर्व सूचना पर यकीन नहीं करते। तब अवश्य चीखते चिल्लाते जब सचमुच ही भूचाल आ चुका होता, तब उन क्षणों में आस-पास चिली क्वेटा चीन, जापान तथा ईरान आदि जैसी विनाशलीला एक बार और घट चुकी होती। चारों ओर एक साथ सैकड़ों, हजारों चीखें सुन मैं जहां कांप उठता वहीं घबराकर पागलों की तरह अपने घर की ओर लौटता। मगर आसपास के खंडहरों में दबे हुई लाशों से टकराने के कारण स्वयं भी चीख उठता—बचाओ बचाओ। ऐसे क्षणों, मेरी पत्नी हड़बड़ाकर मुझे झकझोरती। तब मेरी पत्नी मुझे सपने की अवस्था में समझ मुझे चेतनावस्था में लाने के लिए ताबड़तोड़ कोशिश करती। तब मुझे लगता, सैकड़ों-हजारों खंडहरों में टकराने के कारण मेरे अंग प्रत्यंग में जहां तीखा दर्द है वहीं मेरे शरीर में वह रक्त के कारण चिपचिपाहट है जो जख्मी लाशों की कराहट के बीच मेरे शरीर के साथ आ चिपका था।

थोड़ी देर बाद तब पत्नी फिर सो जाती। शायद इस हकीकत को उसने मेरी आदत समझ लिया है। मगर मैं फिर सो नहीं पाता। घंटों घंटों फिर भूचाल के बारे में सोचता आखिर यह बला क्या है जो एक तो दिन की अपेक्षा रात को यह जहां अधिक भयावह होता है वहीं रात के सन्नाटे में इसका दो-चार मिनट पहले पता चल पाता है दिन को नहीं। दूसरा इसके झटकों का ऐसा प्रभाव क्या कि आदमी अपनों के मोहजाल में से तब उबर-

कर केवल अपने तक ही सिमट आता है। आदमी पत्नी, माता पिता तथा बच्चों के प्रति नैसर्गिक लगाव तक को भूल, केवल अपनी ही प्राण रक्षा पर उतर आता है। मगर उत्तर कुछ भी खोज नहीं पाता। यह बात दूसरी है कि ऐसे कई क्षणों में अपनी पुरानी इस कहानी को पूरा करने की कल्पना के बीच मेरे सारे शरीर में कपकपी छूट जाती। रह रहकर आंखों के सामने वे क्षण उभर आते जब अठारह साल पहले दिल्ली के काफी लोग तबुओं के नीचे पूरे दो महीने रातें बिताने को विवश हुए थे। फिर इस बार तो हद ही हो गयी। बहुत ही साहस बटोरकर मैंने पुरानी कहानी की पाडुलिपि को उठा थोड़ा बहुत उस पर सोचा ही था कि पुन भूचाल आ खड़ा हुआ। यकीन मानिए, मेरी इस कहानी के साथ कई बार ऐसा ही कुछ हुआ है।

इसलिए मैं सोचता हूँ—जब इस भारत भूमि में भगवान का नाम ले किसी भी काम के पूरा हो सकने का विश्वास है तो फिर उसी भगवान से हाथ जोड़ प्रार्थना क्यों न की जाये कि जब तक यह कहानी पूरी न हो जब तक इस कहानी को दुनिया के अधिकांश लोग पढ़ न लें, तब तक कम-से-कम फिर ऐसा न हो। इसीलिए इसी प्रार्थना के साथ मैं इस पुरानी कहानी को पुन उठाता हूँ।

उस रात जब पहली बार भूचाल का झटका आया, आशुतोष घर पर नहीं था। घर में अकेली विजया थी। वह ऐसी विजया जो बिना सहारा दिये बिस्तर में हिल तक नहीं सकती थी। उस पर भी दो कमरों तथा एक ड्राइंगरूम वाला फ्लैट इतना बड़ा कि जिसमें उसका वैसे ही दम घुटता था। तब ऐसे ही क्षणों में आया था—उस बार का भूचाल! लोग तब चीखते-चिल्लाते अपने-अपने घरों से बाहर भागे थे। मगर तब विजया क्या कर सकती? केवल घिसट घिसटकर दरवाजे तक ही आ पायी थी। पता नहीं उस क्षण उसमें इतनी शक्ति कहां से आ गयी थी। यह बात दूसरी थी कि इससे आगे वह जा नहीं सकती थी क्योंकि आशुतोष उसके लिए दवा लेने जाते समय दरवाजे बाहर से बंद कर गया था।

वैसे डॉक्टर की दुकान अधिक दूर नहीं थी। मुश्किल से उसके फ्लैट से पांच-सात मिनट का रास्ता था। मगर ताज्जुब कि इस बार उसे लौटने

में काफी समय लग गया। एक तो घर के ही अंदर सिमटे रहने से तंग आकर टहलने कुछ आगे निकल गया था दूसरे मन बहलाने का उसे अच्छा अवसर मिल गया था। तीन दिनों से विजया का इलाज करने के कारण डॉक्टर भी यह तक जान चुका था कि उसका मरीज और सब कुछ सह सकता है पर इस बात को जरा भी सह नहीं सकता कि उसका आशुतोष उससे अधिक देर दूर रहे। इसीलिए वह उसे बिना लाइन भी दवा दे दिया करता था जबकि आज पहला मौका ऐसा था कि डाक्टर मक्खियां मारता सा ग्राहक का इंतजार कर रहा था। पर इससे क्या आज तो आशुतोष का मन थोड़ा टहलने को बेचैन था! फिर दूसरी बात यह हुई कि थोड़ा आगे निकलते ही जैसे भूचाल का झटका आया वैसे ही बिजली गुल हो गयी। उस पर भी बात यह कि भागते भागते वह बच इसलिए गया कि उसने सुन रखा था झटके के बाद घबराहट में यदि कोई गिर पड़े तो गिरने वाले का वह अंग बेकार हो जाता है जो जमीन से पहले टकराता है। जबकि यह धारणा केवल जलजले के दौरान के ही लिए थी लंबे समय के लिए नहीं। फिर टांग की कमजोरी के कारण वह वैसे भी तेज दौड़ नहीं सकता था।

ठीक ये ही बातें विजया ने भी उस क्षण सोची थीं जब आशुतोष ने घबराहट में दरवाजा खोला था। बल्कि तब वह दरवाजे से कुछ हटकर झटके के साथ जा बैठी थी। एक ओर जब आशुतोष पागलों की तरह चिल्लाया था—विजया विजया—वहीं वह भी प्रत्युत्तर में पूरी शक्ति से चिल्लायी थी। वास्तविकता का पता लगते ही दोनों ने लपककर तब एक दूसरे को अपनी-अपनी बांहों में भर लिया था। विजया के अंग प्रत्यंग में अपने एकमात्र सहारे के मिल जाने की जहां प्रसन्नता थी वहीं आशुतोष के अंग प्रत्यंग में जहां आत्मग्लानि थी, वहीं उसकी आंखों के आगे दस महीने पहले के वे क्षण उभर आ रहे थे जब स्कूटर एक्सीडेंट के बाद पूरे तीन महीने उसके हाथ व पांव में प्लास्टर चढ़ा रहा था तब विजया ने क्या कुछ नहीं किया था! तभी तो उसकी लगन व सेवा को देख अगल-बगल के बेड वाला ने आशुतोष की मां से कहा था "धन्य हैं मां आप जो आपको इस जमाने में भी ऐसी बहू मिली है"! हालांकि वस्तुस्थिति यह थी कि माता पिता भाई-बहन विजया की सूरत से जहां नफरत करते थे वहीं वे उसके

कारण आशुतोष तक को भल चुके थे। यह बात दूसरी थी कि मां की वह ममता मां को वहां तक खींच लायी थी जिसने दुनिया की सामान्य माओं की तरह न ह आशुतोष को दूध पिलाया था।

पर अब तो मामला उल्टा था। आशुतोष की जगह बीमार अब विजया थी। विजया भी वह जिसके एहसानों में वह दबा हुआ था। भला अपनी निजी जमा पूंजी उत्तम भर जेवर तक को बेच आशुतोष का इलाज करना आसान नहीं था। उस पर भी हर पल, हर क्षण उसी के सिरहाने या पावों की ओर बैठी रहती थी। क्योंकि अरबपति की बेटी होने के कारण, उसके एक इशारे भर से इतने रुपये आ सकते थे कि जिनके बल पर वह एक तो क्या, तीन-तीन, चार चार नौकर तक आशुतोष की सेवा में रख सकती थी। फिर उसके पिता ने कहा भी था 'बेटी, तूने मेरी बात न मान भले ही यह शादी कर डाली है मगर याद रखना, दूसरों के आगे हाथ मत फैलाना क्योंकि मुझे संदेह है कि तेरा पति इतने साधन नहीं जुटा पायगा जितने तू ।' पिता के इन्हीं शब्दों का तो प्रतिफल यह था कि विकट से विकट स्थिति में पिता के आगे हाथ न फैलाने की जहां उसने प्रतिज्ञा कर डाली थी वहीं अपनी बीमारी की स्थिति में पति को डगमगाते देख कड़े शब्दों में उसने कहा था, 'खबरदार पिता जी को मेरी बीमारी की सूचना नहीं देना। जानते हो इस सूचना का अर्थ यह होगा कि तुम्हें पैसे की जरूरत है। वैसे ऐसे विकट क्षणों में कौन नहीं चाहता कि उसके आपरेशन से पहले अपने लोग उसके पास हों। पर मैं नहीं चाहती कि जीवन के इन अंतिम क्षणों में आपको अपमानित होने दूं।'

तब आशुतोष अवाक्-सा विजया का मुंह ताकता रह गया था। वैसे ऐसा कहने के पीछे उसका यह आशय कदापि नहीं था। उसने तो अत्यंत सहजता से यह बात इसलिए कही थी कि कहीं आपरेशन से पहले विजया अपने माता पिता, भाई बहनों को देखना तो नहीं चाहती है, क्योंकि डॉक्टरों ने उसे स्पष्ट कह दिया था वैसे तो इनके बचने की जरा भी उम्मीद नहीं है पर अच्छा यह है कि ईश्वर पर भरोसा कर आपरेशन कर दिया जाय। ऐसी मानसिकता के बीच विजया के इन शब्दों ने जहां उसके रोम रोम को झकझोर दिया था वहीं उसके मन में रह रहकर केवल यही

विचार आ रहे थे कि चाहे कुछ भी करना पडे पर इसके मन म यह विचार न आय कि पसा की वजह से इसके इलाज म कमी आ गयी है। मगर लाख प्रयत्न करन पर भी कोई उपाय उसे नही समझ आ रहा था। क्योंकि नौकरी के अलावा अपनी आय के अन्य साधन लेखन को वह दस हजार रुपय म एक प्रकाशक के हाथो इस शत पर बेच चुका था कि अगले पाच वर्षो म वह जितना भी लिखेगा—वह केवल उसे ही देगा और यदि इन पाच वर्षों म वह प्रकाशक को तीन उपन्यास तथा चार अन्य कृतिया नही देगा तो उसके अब तक के सारे लेखन का कापीराइट स्वत ही प्रकाशक के हाथ म चला जायगा। हा मत्यु की स्थिति अपवाद है।

वैसे यह बात किसी और समय की होती तो आशुतोष शायद ही इस शत को स्वीकारता। क्योंकि उसका आदश जहा चाणक्य का गुरु शकटार था वहीं वह लखक था—जो अपन बच्चो व पत्नी की भूख मिटान के लिए कठिन से कठिन परिश्रम करते हुए इस स्थिति तक तो पहुच पाया कि अपनी पत्नी तथा बच्चो को अपन उन मित्रो के सरक्षण म छोड दे—जिन पर उस विश्वास था कि व परिवार के सदस्यो की तरह उसकी बेबसी का नाजायज फायदा नही उठायेंगे। मगर बावजूद इसके उसन बिककर सस्ता बाजारू साहित्य लिखना नही स्वीकार किया। जबकि विजया के इलाज की बेबसी एसी थी कि आशुतोष के पास इसके अलावा और चारा न था। हालाकि करारनामे पर हस्ताक्षर करत समय उसक मन म अपन एक सहयोगी रचनाकार की सलाह हावी हो आयी थी कि सस्ते किस्म के तथा जासूसी उपन्यास लिखो और प्रति उपन्यास तीन हजार फटकारो। इस बात की चिंता न करो कि उपन्यास किसके नाम स छपे। किंतु बावजूद इसके उसन अपन प्रकाशक की शर्तों को इसलिए स्वीकारा कि कम-से-कम वहा अपनी मनमर्जी का लिखन की पूरी आजादी तो थी। जबकि मित्र की सलाह म तो बिकन के अलावा और कुछ नहीं था। फिर इतना सब कुछ कर चुकन पर विजया द्वारा कही बात न तो उसे जड से ही हिला दिया था। भल ही तब वह काफी देर तक विजया के पास अस्पताल म बठे-बठे इधर उधर की बातें करता रहा। पर उसके मन म बार-बार केवल यही प्रश्न आ खडे हो रहे थ कि यह सब उसकी आर्थिक स्थिति का परिणाम

है। फिर दस हजार की पूंजी है भी कितनी ? यदि इनसे भी आगे जरूरत पड जाये तो ? तभी तो अस्पताल से घर लौट एकांत पा उसने उस रात वह उपन्यास लिखा था जिसे फाडकर टुकडे टुकडे करते विजया ने कहा था, "जब एक मां अपने जिस्म के टुकडे अपने बच्चों को अपने से अलग होते देख तथा पति के आदेशानुसार घर में रहकर भी अपने इष्ट की साधना में भागीदार बनने का सपना सजा सकती है तो क्या मैं इतनी अभागिनी हूं कि "

अब बिजली आ चुकी थी। सारे शहर में छाया भयावह कुहराम अब भूचाल की चर्चाओं में बदल चुका था। लगभग सभी लोग अपने-अपने घरों में लौट चुके थे। अलबत्ता कभी कभार सडक पर एक दो आदमियों के चलने की ध्वनि साफ सुनायी दे रही थी। मजे की बात यह कि झटके के बीच हिली धरती, दरवाजा तथा खिडकियों के खटखटाहट की किसी को याद नहीं थी क्योंकि घड घड घटाम की प्रलयकारी आवाज के सामने ये सब फीके थे। आशुतोष भी विजया को सहारा देते हुए पुनः बिस्तर पर लिटा चुका था। मगर विजया अभी भी इतनी डरी हुई थी कि दरवाजा खुला ही रखने की जिद कर रही थी। आशुतोष भूचाल के झटकों के क्षण घर पर न होने के प्रति दुःख प्रकट कर रहा था। जबकि विजया भूचाल को मृत्यु का प्राकृतिक महाविनाशकारी रूप बताते हुए तर्क कर रही थी कि मृत्यु एक ऐसा प्रत्यय है जिसे ब्रह्मांड के प्रत्येक प्राणी को अकेले वरण करना पडता है। ठीक इसी तरह भूचाल की भी ऐसी भयावहता है कि प्रत्येक प्राणी इसके दौरान एकाकी हो जाता है। तब फिर आपके इस क्षण घर पर रहने या न रहने का अर्थ ही क्या होता ?

पर आशुतोष था कि इस बात को नहीं मानते हुए दुनिया भर में त्याग के उदाहरण दे रहा था। इसी तरह इन वैचारिक आदान प्रदानों में काफी समय हो गया। बल्कि धीरे धीरे दरवाजों से बाहर दिखने वाली सडक जहां सुनसान हो आयी, वहीं अब दरवाजा के बंद करने की आवश्यकता तक विजया महसूस करने लगी। यही कारण था कि विजया की इच्छा के अनुरूप आशुतोष दरवाजा बंद करने के लिए आगे बढा। पर अभी दरवाजे

तक पहुच भी नही पाया था कि धड धड धडाम की आवाज के बीच धरती एक बार फिर काप उठी। एक बार फिर बिजली गायब हो गयी। भला एस म आशुतोष भी अपने को कहा रोक पाता। आस पास के लोगो की तरह वही भर मे भूचाल भूचाल चिल्लाते बाहर की ओर भागा। यह बात दूसरी थी कि दरवाजा से दो चार ही कदम आगे पहुचा विजया की याद आते ही काप उठा। बिजली की-सी फुर्ती के बीच पागलो की तरह अदर लौटा। एक माम की बीमारी से बेहद कमजोर हो आयी विजया को नन्ही गुडिया की तरह बाहो म भरकर बाहर ले आया। बाहर चारो ओर अब फिर कुहराम मचा हुआ था। सुरक्षित स्थान पर पहुचते पहुचते आशुतोष का अग प्रत्यग आत्मग्लानि म भर आया, जबकि इन सबसे बेखबर विजया कृतज्ञता के भाव से दबी जा रही थी।

अब परमपिता परमात्मा की कृपा स यह कहानी पूरी हो पायी है। इसीलिए मैं उसका तहदिल से आभार प्रकट करता हू। हा इसी के साथ उसस यह प्राथना करता हू, जसे-जैसे इस कहानी को अधिक स-अधिक लोग पढें वैसे-वस भूचाल के झटको की भयावहता कम होती चली जाय तथा अपने सहृदय पाठको से मैं यह निवेदन करता हू कि चाहे मैं दिखायी दू या नही मगर रात के सन्नाटे के बीच जब कभी मैं 'भूचाल भूचाल' चिल्लाऊ तो मुझ पर जहा वे यकीन करे, वही सडको व गलियो के आवारा कुत्तो को आवारा और हानिकारक न समझे उन पर निगरानी रखें कि कब वे एक निश्चित दिशा की ओर मुह ऊपर उठाकर लगातार ककश स्वर मे भौंकते है और

●●● सम्मेलन

उद्घाटन भाषण के इस हिस्से ने तो इस बार भास्कर को इतना विचलित कर दिया कि उसके लिए एक शब्द आगे टाइप करना कठिन हो आया। वैसे, डिक्टेशन लेते समय भी इस हिस्से ने उसे परेशान किया था। सम्मेलन शुरू होने में मुश्किल से सात-आठ मिनट शेष थे, जबकि उद्घाटन-भाषण छपना तो दूर, टाइप तक नहीं हुआ था। ऐसा इसलिए हुआ कि जिन मंत्री जी को पहले उद्घाटन करना था उन्हें किसी जरूरी काम से नयी दिल्ली जाना पड़ा था। वह तो सम्मेलन के 'ऑर्गनाइजिंग-सेक्रेटरी' ही इतने तेज-तर्रार थे कि उन्होंने सारा मामला संभाल लिया था।

उन्होंने रात-ही रात में एक अन्य मंत्री जी से उद्घाटन करने की स्वीकृति ले ली थी। नये मंत्री जी से संपर्क कर उदघाटन भाषण का मसौदा तैयार कर उनसे 'एप्रूव' भी करवा लिया था, बल्कि उन्होंने तो यहां तक व्यवस्था कर ली थी कि इधर उद्घाटन भाषण होगा, उधर भाषण एक घंटे में छपकर पत्रकारों आदि को ठीक वैसे ही बांटा जायगा—जैसे अध्यक्षीय भाषण। यही वजह थी कि सारी तैयारियां अफरा-तफरी में हो रही थीं। ठीक ऐन ही समय भास्कर की यह मानसिकता कम खपती? तभी तो उसके टाइपराइटर की टिक टिक् रुकी नहीं कि सेक्रेटरी सहित तीन चार व्यक्ति एक साथ बोल उठे थे कि, 'क्या हुआ?'

टिक् टिक टक-टक। मजबूरन भास्कर को भी अपने को संयत करना पड़ा था।

हरी-अप प्लीज, हरी-अप ।

वैसे भास्कर की टाइपिंग की स्पीड नब्बे शब्द प्रति मिनट थी। पर

आज उसके लिए बचे दो पृष्ठ टाइप कर पाना कठिन हो आया था। वह एक बार फिर उसी मानसिकता में आ गया था, जब 'डिक्टेशन' लेते समय इसी हिस्से पर वह ठहरा था। तब उसकी हूँ हूँ न सुनने पर सेक्रेटरी साहब ने उसका ध्यान अपनी ओर खींचा था। पर वह था कि न केवल अतीत की यादों में जा पहुंचा था वरन उन यादों के कारण उसकी पलकें तक गीली हो आयी थीं। यही वजह थी कि सेक्रेटरी साहब अवाक से भास्कर को देखते रह गये थे। वे समझ गये थे कि भास्कर की इस मन स्थिति के पीछे उनके द्वारा तैयार किये गये उद्घाटन भाषण की लाइनें हैं। भाषण का विषय भी तो 'ड्राप आउट स्टूडेंट्स' यानी स्कूल छोड़नेवाले बच्चों की समस्याएं था। आखिर वे भी तो स्वयं भुक्तभोगी थे। तब उनके लिए भी आगे भाषण का 'डिक्टेशन' दे पाना कठिन हो आया था। मगर अब उनकी मजबूरी ऐसी थी कि भाषण के तैयार हुए बिना काम चल नहीं सकता था। इसीलिए उन्होंने भास्कर को तब झकझोरा था।

'साहब सुना है आपको नौकर की ...।' उसी ने तो पूछा था।

'यस यस कम इन कम इन कितने पढ़े लिखे हो?'

'जी साहब मैं तो अनपढ़ ...।'

सचमुच वही दिन भास्कर की जिंदगी का स्वर्णिम दिन था। कहां वह बरतन मलने की नौकरी की खोज में निकला था कहां उसकी स्कूली जिंदगी फिर शुरू हो गयी थी जिसकी उसे सपने में भी उम्मीद नहीं थी। क्योंकि पिता की मृत्यु के साथ उसकी स्कूली जिंदगी समाप्त हो गयी थी। बेचारी मां की भी तबीयत यदि ठीक होती, तो स्कूल पढ़ने का सपना वह बनाये रख सकता था। पर बीमारी के कारण मां को खुद ही सहारे की जरूरत थी। ऊपर से सबसे बड़ा होने के कारण सारे परिवार का भार उसी पर था। यह भी मात्र संयोग था कि वह उस दरवाजे पहुंचा जिन्होंने भले ही उससे नौकरी करवायी पर साथ ही उसे पढ़ाया भी। वह तो उसकी मालकिन नहीं मानी, नहीं तो मालिक शायद उससे नौकरी भी नहीं करवाते। इतना ही नहीं उसके मालिक ने उसके भाई-बहनों व मां तक की पूरी मदद की थी। वह दिनभर काम और

रातभर पढाई करता था।

य ही सारी बातें थी कि उदघाटन भाषण के इस हिस्से को वह सह नहीं पाया था। क्योंकि सेक्रेटरी साहब न उसे 'डिक्टेशन' दिया था—'अपवादों का छोड जो भी बच्चे पढाई के दिनों स्कूल छोडते ह उसके पीछे कोई न कोई मजबूरी होती है। चाह वह माता पिता की अकाल मौत हो या फिर गरीबी। आकडे यदि इकट्ठे किय जाये तो स्कूल छोडनेवालो का पचानवे प्रतिशत ऐसे ही अभागो का होता है। पर अफसोस कि 'ड्राप आउट स्टूडेंट्स' की बातें तो आये दिन होती है और उनकी साक्षरता की बातें भी आये दिन की जाती ह, पर इस दिशा म सोचा ही नही जाता कि ऐसे बच्चे स्कूल क्या छोडते है । यह ठीक है कि संविधान के अनुसार चौदह साल से कम उम्र क बच्चो से मजदूरी कराना कानूनन जुर्म है। क्या इस मुद्दे पर अमल होता है ? निरक्षर प्रौढो को साक्षर बनाने के लाख प्रयास करते हुए भी निरक्षरो की सख्या म कमी नही आ पाती है। ऐसा इसलिए कि सौ निरक्षरो को जहा साक्षर बनाया जाता ह, वही निरक्षरो म एक साथ पाच सौ और आ मिलते ह। इनकी समस्याओ के बारे मे गाधी जी तथा जवाहरलाल जी ने गभीरता स सोचा था। वे समझते थे कि ये ही बच्चे आगे चलकर समाज के लिए अभिशाप बनते ह। इसलिए स्कूल छोडनेवालो की समस्याओ ।

इससे आगे भास्कर के लिए 'डिक्टेशन' न पाना कठिन हो आया था। क्योंकि, इससे आग की लाइनें बिल्कुल उसकी जिंदगी स मेल खाती थी। ऊपर स 'डिक्टेशन' देते समय सेक्रेटरी साहब की गीली पलको के दर्द ने उसे और भी विचलित कर दिया था। क्योंकि तब उसके मन म विचार आया था कि जो व्यक्ति इस तरह की भाषा लिख रहा है उसके अपने अन्दर म कहीं-न कहीं इसका दर्द जरूर छिपा हुआ है। अन्यथा

सचमुच उसका यह सोचना तब खरा उतरा था जब सेक्रेटरी साहब ने अपनी कहानी उसे सुनायी थी। मसौदा टाइप होने के बाद सेक्रेटरी साहब ने स्पष्ट शब्दो म स्वीकारा था कि यदि मैं तीन दिन की भूख के कारण हुसैनी साहब की क्लास मे न गिर पडता तो शायद मैं भी मूरख-गवार ही रहता। क्योंकि तब हकीकत का पता चलते ही हुसैनी साहब

पढाइ की व्यवस्था की थी। ऊपर स यदि मर नबरो का दख मेरी बीवी मुग्ध पर, फिदा नही हाती, तब शायद इतन पर ही मैं किसी स्कूल का मास्टर ही रह जाता। जबकि आज मैं प्रोफेसर हू।' इतना ता क्या उन्होंने यहा तक सुनाया था कि उन्होंने न केवल चार-पाच घरो म बतन मल, वरन मालिका के बच्चा का मक्खन डबल राटी खिलाकर खुद आधे पट कई दिन बिताय हैं। क्योंकि तीन चार राटिया खात ही मालकिनें कह उठती थीं—अर, तुम तो बहुत खाना खात हा। तुम्हारी ही उम्र का मरा बेटा दा राटी भी नही खा पाता है।' मगर इतने पर भी मेरी पढने की लालसा खत्म नहीं हुई थी। जब भी मालिका क बच्चा के हाथा कापी-किताबें देखता, तब मेर मन म विचार आता कि क्या कभी मैं भी इसी तरह किताबें पढ पाऊगा ? बकरी स चलत मुह की मुझे चाह नही थी।

सयोग स एक दिन मेरा सपक रात्रि स्कूल के एक अध्यापक स हा गया। उसन मुझे मट्रिक की परीक्षा प्राइवेट तौर पर दन की सलाह दी। मगर मेरे लिए फाम भरना आदि सभी कुछ समस्या थी। जान उस अध्यापक का मुझ पर कैसे तरस आया या जान क्या बात थी कि उसन मेरा फाम खुद फीस दकर भरा दिया। मैं मालिका की नजरें बचाकर रात म पढता था। मैं परीक्षा म पास हुआ और अपन जिल म फस्ट आया था। इसी नतीजे क साथ मेरा भाग्य बदला। मुझे वजीफा मिल गया और मैंन इटर म दाखिला ले लिया।

वजीफे के पसा स कापी किताबें ता जुट जाती, पर राटी व मकान नही जुटत थे। यह सब कुछ हुमैनी साहब न दिया था। मैं भूखा उनका कलाम म बहोश जो हुआ था। यही वजह है कि अब जब भी मैं किसी छोट बच्च का मजदूरी करत दखता हू, तब मेरा माथा फट आता है, घटों घटा मैं यही सोचता रह जाता हू, काश ! इस भी रात्रि-स्कूल के मास्टर चदरसिंह व हुमैनी साहब जस कोई मिल जान।

'यह भी भाग्य की बात है कि एक आई० ए० एस० की बटी हात हुए भी मेरी पत्नी मुझे इन कामो स रोकती नही, बल्कि पसा की वजह स भर कामो म रुकावटें आती दख स्वय नौकरी करती है। मगर इस तरह के अभाग बच्चो की तादाद इतनी है कि चाहते हुए भी हम उनक

लिए अधिक कर नही पाते है। बच्चो को इन केंद्रो को समर्पित करके मैं सिर्फ उस चदरगिह की गुरु दक्षिणा भी चुका रहा हू जिन्होने मेरी नौकरी लगने की खुशी पर मिठाई के डिब्बे को पकडते समय कहा था— बेटे यदि अभागे बच्चो के आखो के आसुओ को अधिक से-अधिक पोछ सको तो यह मेरे ऊपर बडी कृपा होगी '

भास्कर तब अवाक्-सा सक्रेटरी साहब को देखता रह गया था। उसका अनुभव यही था कि जितने भी लोग ऊपर पहुचे है अपनी जनता से बीच से या तो है ही नही, या फिर वे एम है जो अपनी असलियत को भूल गये है। जबकि इस बार नये मत्री जी ने स्पष्ट शब्दो मे स्वीकारा था— दुनिया की अधिकाश सरकारें भले ही शिक्षा-पद्धति पर जोर देने का दिखावा करती है, मगर उनकी योजनाए ऐसी होती है, जिसमे पिछे बच्चे हुए हमेशा के लिए और अधिक दबते चले जायें। क्योकि ऐसे करने पर ही उनके जिनमे बेटा की जिंदगी निर्भर रहती है। वैसे हम भी यह दावा तो नही करते कि इस तरह की बातो से हम उबर गये है। मैं तो यह मानता हू कि हमारी शिक्षा-पद्धति बच्चो को दो भागो मे बाट देती है। एक ओर सपनो के बच्चे होते है, दूसरी ओर विपन्नो के। पर एकदम सारी बुराइयो को दूर नही किया जा सकता। नेहरू जी का सपना था कि उनके वतन का एक भी आदमी शारीरिक व मानसिक रूप से गुलाम न रहे। इसीलिए उनके इसी सपने को पूरा करने के लिए पूरे देश मे एक योजना बनायी गयी है कि '

उद्घाटन भाषण पूरा टाइप हो चुका था। सक्रेटरी साहब भास्कर की पीठ थपथपाते हुए एक प्रति छपने के लिए प्रेस वाले को दे और दूसरी को स्वय लेकर हाल की ओर चल पडे।

पूरा हॉल खचाखच भरा हुआ था। भीड की वजह से भास्कर को भी अदर पहुचने मे थोडी देर लगी। वह अदर तब पहुचा, जब तालियो की गडगडाहट के बीच उद्घाटन भाषण शुरू हो चुका था। मच के पीछे मोटे-मोटे अक्षरो मे लिखा था—'बाल मजदूर और उनकी समस्याए।

उसने मुडकर पीछे देखा तो दग रह गया, क्योकि हाल मे इधर-

उधर जान भर का छोडी जगहा म ट्रे म पानी के गिलास लिय बारह-चौदह माल के बच्चे जहा-तहा खडे थ। वे कुरसिया के बीच घिसककर लोगा का पानी पिला रह थ। उसका माथा झनझना उठा। उसका मन वहा स फिर उखड गया। पर हाल से बाहर निकलन की साच ही रहा था कि उसकी नजर फिर सक्रेटरी साहब पर जा टिकी। वह साचता रह गया, कहा सक्रेटरी साहब न सम्मेलन के विषय की आर लोगा का ध्यान खींचने के लिए जान-बूझकर तो ऐसा नही किया है या व्यस्ततावश अनजान म उनस एसा हो गया है ?

,

नेकीराम की चारपाइया

मयाा कि वह आज ज्ञानी था। उनको अपनी ओर आन दख स्वय वाला था—'साहब चारपाइया वनानी ह?' यही कारण था कि उनकी यह बात सुन नकीराम अनायक उस दखन रह गये। उन्ह तब ऐसा लगा जसे उन्ह धरती पा वह दामन मिल आयी ह जिसकी कल्पना भी उनक लिए असभव थी। क्योकि वे ता न तन इस वान म परेशान थे यदि इस वार व चारपाइया नही वना पाय ता फिर वे शायद ही बना पाये। खतरा था उनकी योजना का पत्नी को पता चलन ही उनकी याजना पर मुसीबत का पहाड टूट पडेगा। इसीलिए महमूद के खालीपन का पता लगत ही उनके झुर्रिया भर चेहरे पर पहली वार चमक झाक आयी थी तव उन्होन महमूद के पीछे दीवार के सहारे खडी वनी-वनायी चारपाइया का ईर्ष्या भरी नजरो से देखा था, सोचा था—इनस सौ गुना अच्छी चारपाइया वनवाऊगा। इसी कारण मारे खुशी के वे महमूद का अपना सारा काम समझान लगे। पर हुआ यह कि उनकी वात पूरी होने ही महमूद न जैसे ही पाच चारपाइया का हिसाब फनाया ता उनकी ता अलग, उनकी खुशी तक की जमीन हिल गयी। क्योकि चारपाइया के लिए उन्होने सौ तय करे थ। महमूदी हिसाब अठारह किला बान, बुनाई तथा टूट फूट के कारण एक सा तीस तक जा खिचा था।

वसे यह बात नही कि वे आज इतन पसे खच नही कर सकने थे। आज ता उनके पास इमरजेंसी लोन के तीन सौ रुपय थे। वे ता इन पसा मे चारपाइया के अलावा रजाइया गद्दे आदि ठीक कराकर एक बच्चे का एक स्वेटर खरीदते हुए भी वचे पसो मे तनख्वा तक के चार-पाच दिन

खीचने की सोचे थे। पर महमूद ने उनके इसी हिसाब के लिए प्रश्न खड़ा कर दिया था। मगर हद यह कि इतनी बातें कर चुकने पर वे महमूद को मना भी नहीं कर सकते थे। एक तो सफेदपोशी जिन्दगी की प्रतिष्ठा की बात दूसरा महमूद और उनकी बातों के दौरान तीन चार और बाबू महमूद से खालीपने की बात पूछकर निराश से लौट चुके थे। कौन जाने वे लोग भी नेकीराम की तरह महमूद की फिराक में थे। यही कारण था कि नकीराम को महमूदी हिसाब स्वीकारना ही पड़ा। यह अलग बात थी कि बान खरीदने के बाद जब वे महमूद के साथ घर को लौटने लगे तब पत्नी की याद आते ही वे घबरा उठे।

मगर इस बार उनकी पत्नी महमूद और बान लिये आते पति को देखकर भी खीजी नहीं। उल्टा लंबे अर्से के बाद मुस्करायी थी। यह अलग बात थी कि नकीराम ने पत्नी की इस मुस्कराहट का भी अर्थ दूसरा ही लगा लिया। महमूद के बदले वे स्वयं जो बान ला रहे थे। जबकि आज की हकीकत यह थी कि उनकी पत्नी ऐसा कुछ सोच सकने या करने की स्थिति में नहीं थी। पिछली रात की एक बात का उन पर इतना असर था कि वह अंदर ही अंदर आज रो रही थी। फिर बसाढ़िया वाले महमूद ने उनके मन मस्तिष्क को झकझोर डाला था। उन्हें तो महमूद को देख यहां तक लगा था जैसे सामने चारपाई बनाने वाला महमूद नहीं बल्कि उनकी गृहस्थी उसके रूप में खड़ी है। एक तो अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर मनाये गये विकलांग वर्ष का उन पर असर था दूसरे उन्होंने रात सपने में पति को बड़बड़ाते सुना था—'चिंता मत करो। अब कल से कोई फर्श पर नहीं सोएगा। उन्होंने सारा इंतजाम कर रखा है। अब एक तुम तो क्या धरती को कोई भी नहीं।' तब वह अवाक्-सी अगल बगल सोये पति व बच्चों को देखती रह गयी थी। पहली बार उन्हें भी अपना परिवार चूहे के परिवार-सा लगा था। संयोग कि उनका नाम दमयंती था। हालांकि इससे पहले पति के गुस्से और बातों को सुन वह अक्सर सोचा करती थी—उनके पति का दिमाग सठिया आया है जबकि अब पति की बात सुन अपने को कोसने लगी थी—पति की इस मानसिकता के पीछे सिर्फ वे हैं। तब उनको अपना वह सारा व्यवहार याद

हो आया था जब उनके पति अक्सर चारपाइयों की बातें छेड़ते थे। और वे थी कि किसी न किसी बहाने चारपाइयों की बात टाल देती थी। यही कारण था कि रात उनकी आंखों के सामने बार-बार वह दिन खिंच आया था—जब उनकी जिद के कारण नकीराम की चारपाई योजना चादर और दरी योजना में तब्दील हुई थी। उनकी नजरों में ऊपर का क्वाटर होने के कारण फर्श पर सोया जा सकता था। तब दरी व चादर खरीदने पर वे राजी हुए थे जबकि अब उन्हें बार-बार याद आ रहा था उनके पति उस रात तो अलग कई कई रात सिर्फ करवटें बदलते रहे थे। तब उन्हें पति की करवटों से जरा भी हमदर्दी नहीं थी जबकि अब उन्हें यह खतरा हो आया था कि कहीं उनके नल उसे मात न छोड़ जायें। अलबत्ता पी फटते समय तक उन्हें यह संदेह अवश्य हो आया था—आज जरूर दाल में काला है। इसीलिए उन्होंने पति के नहाते समय पति की जेबें टटोली थीं। पर बावजूद तीन सौ रुपये लेकर नेन के ने चुप रही थी। क्योंकि अब वे इस सीमा तक आ पहुंची थी—इस बार यदि पति न कोई और बात भी की तो वे स्वयं चारपाइयों की जिद करेंगी।

भला ऐसी मानसिकता में वह आज विरोध कैसे करती! आज तो उनका ऐसा तक व्यवहार था कि महमूद के छत में पहुंचकर बाद बाद में फर्श पर रखा वे चारपाइयों के पायों और डंडों को पहले लाकर महमूद के सामने रखने लगी। हां उन्हें लाते उनके चेहरे पर यह घबराहट अवश्य झलकी थी कि उनको देख महमूद क्या सोचेगा। क्योंकि चारपाइयों के पायों व डंडों का एक ओर लकड़ी का ढेर सा लगा था। उन्हें इस तरह लाते देख महमूद ने भी सोचा था—बाबू जी अभी-अभी बदली होकर आये हैं। ऐसा वह कई घरों में देख भी चुका था। उसे क्या पता था, नकीराम की चारपाइयों की यह दशा बदली के सफर से नहीं, जिंदगी के ऐसे सफर के कारण है जिसके लिए विश्ववैंक भी कम है। ऊपर से रही-सही स्थिति नेकीराम की उस चारपाई ने स्पष्ट कर दी, जो कमरे में बिछी होने की स्थिति में तो चारपाई की शक्ल में थी। मगर नकीराम तथा उनकी पत्नी द्वारा छत पर लाते ही ऐसे दिखने लगी जैसेकि उसके बानों में आपसी होड़ हो कि छत के फर्श को छूने का उनमें गोल्ड

मैंडन यौन पायगा। ऐसा इसलिए कि नेकीराम ने दृका व ऊपर रंगे विस्तर का महारा पाकर बान जहा उठे थ वही चारपाई पर बिछे बिस्तर न नकीराम की उम असलियत का छिपा रखा था जिसम रात उम पर स विस्तर उठाकर फश पर माया जाता था। हा, उमकी बची-खुची शक्ल ऐसी कि वर्गाकार न होकर लगभग समानातर चतुभु ज की शक्ल म थी। यही कारण था कि अब महमूद तक पहल कभी नकीराम व उनकी पत्नी का देखता रह गया था, फिर मजदूरपन की अपनी मजबूरी म यह यह परखन लगा—कौन-कौन मायी पाये और डडे हैं

सचमुच नकीराम की इन चारपाइया की दास्तान ही अजीब थी। कमर म बिछी चारपाई का छाड बाकी चारपाइया तब खरीदी गयी थी जब आठ साल पहल उनके दो भाई बी० ए० पास कर नौकरी की खोज मे एक साथ आये थे। हालाकि नेकीराम तब भी चारपाइया खरीदने की स्थिति म नहा थे। क्योंकि भाइया की फीस आदि क लिए उन्ह इतना भेजना पडता था कि बची तनखा म मुश्किल म राटिया चल पाती थी। वह भी इसलिए नहीं कि बची तनखा राटिया के लिए काफी थी, बल्कि इसलिए कि बच्चा का दूध तथा सब्जी जस दमा खर्चों का काटकर। फिर उनका साच था—कष्ट क दिन तभी तक ह जब तक भाइया की नौकरी नही लगती। इसम भी बडी बात यह थी कि उनकी पत्नी भाइया की मदद के मामले म उदार थी। उनका ता उनम कहना था—यह ठीक है वे आपके सौतेले भाई ह पर क्या पिता की मदद करना आपका फज नही?

फिर भाइया के आते ही चारपाइया खरीदन के पीछे कारण यह था कि जब वे दिल्ली आय थे तब उन्ह लगभग आठ साल नीच फश पर ही साना पडा था। हालाकि गाव म भी व हमशा फश पर सोय थे। पर जान क्या बात थी कि दिल्ली म फश पर साना उन्ह बेहद अखरता था। तब व अक्सर साचा करत थ—कैसी अजीब है आदमी की यह जिंदगी जिसमे आदमी नय भार की आपाधापी से जूझत बीत दिन की थकान भी न मिटा सके। आदमी के पास भरपेट खान के बाद आराम से सान लायक चारपाई ता हानी ही चाहिए। कई बार उनके मन मे खयाल आता—दुनिया की कैसी अजीब है यह दास्तान, मरने पर तो आदमी का चारपाई म ल जाया जाता

हैं, जीते-जी चारपाई उसके लिए सपना बनी रहती है। इसलिए उन्होंने एक बार नहीं, कई बार अपना फैसला दुहराया था—नौकरी की पहली तनखा पर सबसे पहले वे चारपाई खरीदेंगे। मगर इसमें भी दिक्कत यह हो आयी कि पहले तो चार साल तक नौकरी नहीं लगी। फिर नौकरी लगने पर समस्या यह हो आयी, यदि वे चारपाई खरीद लें तो गाँव के वे बाकी चार बेकार कहाँ सोयेंगे जो दिलावर चाचा की सराय में रात एक दूसरे का मुँह देख अपना दुःख भूला करते थे? ऊपर से चाचा की बातें ऐसी कि जिनके कारण दूसरी जगह कमरा लेने के बदले उन्होंने चाचा के ही साथ रहना उचित समझा। क्योंकि चाचा अक्सर कहा करते थे— भाई, यह तो सराय है जिसके दरवाजे गाँव व इलाके के लोगों के लिए हमेशा खुले हैं। यह अलग बात है कि काम निकल जाने पर लोग दिलावर चाचा को न सिर्फ भूल जाते हैं वरन् जब कभी सब्जी में ज्यादा पानी पड़ जाये तो कहा करते हैं कि आज दिलावरी मार्का सब्जी बन आयी है। लोग भूल जाते हैं, सराय सिर्फ रैनबसेरा हुआ करती है जबकि मेरी सराय ऐसी है जिसमें जब कभी कोई आया, कोई भूखा नहीं रहा। कोई सोचे तो जरा खाने वाले आठ दस जने हों तो मैं पाव जिमीकंद लाकर उनको रीग-रीग सब्जी नहीं खिलाऊँ तो और क्या करूँ! दुनिया समझती है, बीवी-बच्चों की भी परवाह न करने वाला मैं बेवकूफ हूँ, पर मैं सोचता हूँ—मेरी धरती इतनी तो बाँझ नहीं जो ऐसा आदमी पैदा ही नहीं कर जो अपने दुःख में दूसरों का दुःख बड़ा समझकर मेरे इलाके व मेरे देश के लोगों का दुःख दूर न करे। मुझे तो हर बेकार के चेहरे पर ऐसे ही '

भला ऐसी बातें सुनकर नकीराम नौकरी लगने पर भी दिलावर की सराय से अलग कैसे जाते? इसी कारण वे पहली तनखा पाकर भी चारपाई नहीं खरीद सके थे। हाँ, उन्होंने चारपाई तब खरीदी थी जब शादी हो आने के कारण चाचा की सराय में रहना अव्यावहारिक था। पर फिर भी वे चाचा की सराय को भूले नहीं थे। जरा भी गुंजाइश होने पर वे न सिर्फ चाचा की सराय में दस-पंद्रह किलो आटा पहुँचा आते थे वरन् जब भी ठंड में ठिठुरते बच्चों को देखते थे तो उनका मन पसीज आता था।

यही तो कारण था कि भाइयों को फर्श पर सोते वे कैसे सह पाते!

उनके आते ही उन्होंने उन सबके लिए चारपाइयाँ खरीदी थीं। शायद यह भी एक संयोग था। एक तो भाइयों के आने ही कमरे की दिक्कत, दूसरा एक गरीब मकान मालिक की लड़की की शादी के लिए एक हजार रुपया की जरूरत। तीसरा एक हजार एडवांस देने पर चपरासी-क्वाटर की खुली जगह का लालच। ऊपर से आश्चर्य कि नकीराम ने एक मित्र से इस बात का जिक्र क्या किया कि एक ही घंटे में हजार की जगह पंद्रह सौ हाजिर। नतीजा यह कि समाज की सोसायटी के सहारे छत्तीस ही घंटे के अंदर न सिर्फ नया मकान वरन वे पाँच चारपाइयाँ में पहली बार अपने पूरे परिवार के साथ। अलबत्ता वे ऐसा रखते हुए भी यह भूल नहीं पाये थे कि उनकी माँ सौतेली माँ के व्यवहार के कारण इस समय भी गाँव मकान के चौक में फर्श पर सोयी होंगी। पर तभी उन्होंने सोचा था—भलाई का फल हमेशा भला मिलता है। उनके भाई जरूर उनकी माँ को चारपाई पर सुलायेंगे। उन्हें क्या पता था जिनको वे भाई समझे हैं वे भाई नहीं हैं सौतेले हैं। वे तब भूल गये थे आने वाले कल में अब उन्हें पचास की जगह न सिर्फ पचहत्तर किराया देना पड़ेगा वरन् छः जनों के बदले आठों के लिए राशन जुटाते जुटाते वे इस स्थिति तक पहुँच जायेंगे कि जिस सोसायटी में उन्हें दो घंटे में हजार की जगह पंद्रह सौ मिले थे उसी सोसायटी की मासिक किश्त जमा न कर पाने के कारण उन्हें अपमानित होकर इस्तीफा इसलिए देना पड़ेगा कि भाइयों के नाम से आने वाले मनीआर्डरों के लिए फार्म ही पोस्ट आफिस में खतम हो गये हैं

इस पर भी इतना ही हुआ होता तो बात और थी। हद तो यह हो जायी कि एक भाई की शादी के मौके पर उन्हें अपनी सौतेली माँ से एक ऐसा वाक्य सुनना पड़ा जिसे सुन वे हक्के-बक्के रह गये। तभी तो वे चक्कर-सा खा छज्जे पर बैठ गये थे। पर आश्चर्य कि पूरी रिश्तेदारी में से न तो किसी ने सौतेली माँ को फटकारा था और न नकी को दिलासा दी थी। बस भी नकी के पास अब बचा क्या था। अब तो उनके पास सिर्फ वे आँसू बचे थे जिन्हें वहाँ की कोई कीमत नहीं चुकानी पड़ती है। अगर ऐसी बात नहीं होती तो सौतेली यह थोड़े ही कहती—वह तो जनम भर का नंगा हुआ। जरा उससे पूछो तो उसके पास लौटने का पैसा है या नहीं हाँ इसके जवाब में

अब तक खामोश रही उनकी मा अवश्य बोली थी—दुनिया में सभी नगे पदा होत ह। सभी दुनिया मे नगे ही जात ह। फिर किसी के पास यदि होता भी है तो दूसरो का कौन देता है। वसे जो दूसरा का देता है वही आज के जमान का नगा है। कोई बात नही मेरा बेटा नगा ही सही, अब मैं अपन बट क साथ जाती हू दो रोटी मुझे दे ही देगा। वैसे भी अपना पट तो कुत्ता भी पाल लता है। खबरदार जो इससे आग किसी न कुछ कहा

इसके बाद नेकीराम अपनी मा का क्या समझात ! अगले ही सुबह अपनी मा को अपन साथ दिल्ली ले आय थे। अलबत्ता मा को लात समय उन्हें यह अहसास हो आया था कि वे न सिफ मा को ला रह ह, वरन् हमेशा हमेशा के लिए भाइया स अलग हो रह है तथा अब आग का समय उनका ऐसा आन वाला है जिसमे उनकी दमयती उनस कहा करगी—तुम निकम्मे नही तो और क्या हो, जो यह तक नही समय सके—आज के जमान म तो एक कोख से पैदा हुए भाई भाई नही हो सकत ह। हा उनके लिए थोडे सतोष की बात यह थी कि नियोजित परिवार के जमाने मे उनका परिवार इतना अनियोजित नही था जिस सभाला ही नही जा सके। इस मामल म उन्होंने काफी सफलता भी पा ली थी। क्योकि भाइया के जमाने म पहली का खतम हो आती उनकी तनखा धीर धीर बीस तक खिंचन ही लगी थी। इसस अधिक उसम बरक्त इसलिए नही थी कि वे ऐस कमचारी नही थ जिनका बिना माग ही सरकार पाच-पाच छ छ महगाई-भत्ते का तोहफा बैक या फड म जमा करन दिया करती थी। व तो एस कमचारी थे जिनका महगाई-भत्ता महीना पहल डयू हो जान पर भी वर्षों तक कुभकर्णी फैसले के अधीन लटका ही रहता था। क्योकि नीति निर्देशक अच्छी तरह जानत थ, उनकी सुविधाए सिफ तब तक हैं जब तक लोग रोटी और कपडा म ही उलझे रहें। चारपाइया तो बहुत दूर की बात थी। एस म उनके पास पाच चारपाइया को बनान लायक पैसा कहा से होते ? हा वे एक एक कर चारपाइया बना सकत थ। पर उसम दिक्कत यह थी कि बच्चो को जस ही एक के बनान का पता चलता, व आपस म लडन लगत—'नयी म मैं सोऊगा, मैं सोऊगा।' इसलिए नतीजा यह कि नकीराम की चारपाइया लगभग तीन साल स पडी थी।

अब ऊपर महमूद चारपाइया बुनने लगा था। आखिर वह इतना अनुभवहीन तो नही था जो मालिक के न बता सकने पर भी अलग-अलग चारपाइया के डडो और पाया को अलग-अलग न कर सके। यह अलग बात थी कि इस छटाई के दौरान पहले जहा वह खीजा था, वही बाद मे उसका मन नकीराम के प्रति इतना पसीजा था कि उसन अदर-ही-अदर फैसला किया था—भले ही पाया के छोटे-बडे हो आने के कारण उन्हें ठीक करने म उसे नये सिर से मेहनत करनी पडे। वह टूट-फूट को निभायगा। सयोग कि सिर्फ एक पाया टूटा था। अलबत्ता दो चारपाइयो के डडे तब तक नही बनत जब तक फिर काटन पर चारपाई के घुटनो तक सिकुड़न की मजबूरी ही न हो आये।

नीचे नकीराम थे कि रजाइया और गद्दो को एक जगह जमा करने के बाद इस कशमकश म आ पहुचे थे कि करें तो करें क्या ? क्योंकि बिटिया के सुबह ही फट आये सूट की पूर्ति उनकी जरूरतो म और जुड चुकी थी। इसलिए वे चाहते हुए भी रजाइयो म हाथ डालने की हिम्मत नही जुटा पा रहे थे। ऊपर से रजाइया व गद्दे एम-जमे कि वे सुदामा के तदुलो की पोटलिया हो। क्योकि उनकी रूई यदि कई जगह रूई के ढेर की शक्ल म थी तो कई जगह सिर्फ कपडा आमने-सामने।

—पापा चलो न बाजार। सबसे पहले मेरा स्वेटर।' नकीराम का लडका जिद पर उतर आया था।

—हा बेटा जरूर खरीदेंगे दमयती बेटे को दिलासा दे रही थी। बिटिया को समझा रही थी बेटी, पहले बडा काम कर लेने दे। तेरा सूट तो पहली को भी बन जायगा। देख तो पहले इसको स्वेटर चाहिए। इसके निकम्मे साथियो ने स्वेटर के टूटे डोरो को खीच-खीचकर पहनने लायक भी नहीं छोडा है। गाठें लगायी जाये तो कब तक ?'

मगर नकीराम खामोश थे। शायद वे पत्नी की तरह बच्चो को दिलासा तक देने की स्थिति म नहीं थे। क्योकि सबकी निगाहे उन पर थी, उनको दु ख था—वे किसका मुह देखें। इसलिए उनकी निगाहें सिर्फ रजाइयो पर थी। जानते जो थे, जिस तरह से उनकी ख्वाहिश चारपाइया थी उसी तरह उनकी पत्नी की ख्वाहिश कभी अच्छा बिस्तर था। यहीं

कारण था कि इस याद ने उनको इतना बेचैन कर दिया कि उनकी आंखों के सामने उनका सारा अतीत खिंच आया। वैसे, उन्हें भी लखपति बनने के मौके मिले थे। पर वे लखपति बनते कैसे? उनका तो आदर्श वह दिलावर था—जो बेकारों को रोज-रोज सब्जी खिलाया करता था। उसी का तो असर था कि वे आज के खुलेआम रिश्वती जमाने में भी एक कप चाय को भी रिश्वत मानते थे। तभी जाने क्या हुआ कि उन्होंने आवेशवश एक रजाई उठा ली। तागा तोड़ने लगे। उनको देख दमयंती ने भी दूसरी उठा ली। अब इधर रजाइयों के तागे टूट रहे थे। उधर वर्षों बाद दमयंती व उनके दिलों के टूटे तागे जुड़ने शुरू हो आये थे। गरीब दिलों में तागे ऐसे ही टूटते और जुड़ते हैं। नकीराम को पत्नी का वह चेहरा याद आ रहा था जब बच्चों की मांग के बीच वह अक्सर कहा करती थी—मेरे सामने रोकर कुछ नहीं बनेगा। जाओ अपने उन चाचाजी के सामने जिनकी याद छत पर पड़ी है। कौन जाने चारपाइयां ही पिघल जायें...' दमयंती को अपने पति के उस सपने की याद आ रही थी जिसमें उन्होंने धरती भर के लोगों के लिए चारपाइयों की कल्पना की थी। सामने बरामदे में दमे की मरीज मां खांस रही थीं—खों खों। शायद नीचे फर्श पर सोने के कारण मां को भी गांव याद आ गया था। क्योंकि गांव में ठीक उनके सोने की जगह के ऊपर लकड़ी की बनी पाटी में दर्जनों पाये व डंडे पड़े रहते थे। तब नकीराम बचपन में कई बार रात ही रात में उन्हें जोड़ने की सोचते थे। बस, इसी याद का आना था कि नकीराम के लिए भी अपने को संभाल पाना कठिन हो आया। उन्होंने गुस्से में आकर तागा इतने जोर से तोड़ा कि वर्षों पुराना रजाई का छीजा कपड़ा बुरी तरह फट आया—चर-चर

अब नकीराम और भी कांप उठे। अब तो रजाई के कपड़े की जरूरत और उभर आयी थी। आखिर बंधी-बंधाई कंदी आमद की यह स्थिति न हो तो किसकी हो। इसीलिए उनकी आंखों के आगे पूरी तरह अंधेरा छा आया। घबराकर उन्होंने दमयंती को देखा, इससे अधिक वे कर भी क्या सकते थे। क्योंकि नकी की नकिया अब तक उन्हीं के कंधे पर टिकी थी। फिर उनके अपने अनुभव थे—इंसान इंसान के आंसू देख पिघल सकता है पर पत्थरदिल ईश्वर नहीं। शुक्र भी यह कि दमयंती इतने पर भी घबरायी

नहीं। शायद जानता था—मक्ता की परीक्षा वाली बातें भले ही द्वापर व त्रेता युग म रही हो पर आज के जमाने म तो स्थिति यहा तक हो आयी है कि आदमी का अपना श्रम तक उसका अपना नहीं। मगर आज अब उनके लिए भी समस्या करे तो करें क्या? आज तो उनके पास तक कुछ नहीं था, वक्त-बेवक्त के लिए छिपाये उनके पैसे तक अब गृहस्थी के चूल्हे म स्वाहा हो चुके थे। उनके पति के पानी भर आये फेफडो के पानी का मुआल, फलो की एक एक जरूरत जो पड आयी थी। क्योकि वे पिछले जन्मो म एसे ही कर्मों के फलो की धरोहर लेकर पैदा हुए थे। भला जब एक गूगी मा अपने बेटे के लिए नगा शब्द नही सुन सकी तो एक नारी यह कैसे सहती—उसके पति की तो जीभ फलो के लिए सूखे और वह वक्त बेवक्त के लिए पति से पैसे छिपाये रहे? हा उनके लिए तब समस्या अवश्य खडी हो जाती थी जब पति जबरदस्ती फल बच्चो को पकडाते थे और बच्चे उन्हे पुन पिता को पकडा देते थे। शायद वे भी जान चुके थे—वे धरती म धरती के फलो का खाने नही धरती के पूर्वजन्मी कर्मों के फलो का खाने पैदा हुए है। आखिर अब वे इतने बच्चे तो रहे नही थे जो पिता की हकीकत की अनदेखी कर सकें। क्योकि वे देख चुके थे, उनके चाचा एक दो बार आये अवश्य थे, पर उन्होने पैसा की कमी के बारे म फजियत भर भी पूछा नही था। हा जहा-तहा वहा अवश्य करते थे—भाई साहब का परिवार तो ऐसा परिवार है जिसमे समुद्र की तरह सारी मदद स्वाहा हो जाय। ये ही बातें थी जो नकी के बच्चे तक एक तरह म तन स आये थे। और तो और कोई और उपाय नही देखा तो उन्होने इम्तहान के दिनो तक रात-रात पढाई कर पिता के लिए फल जुटाये थे।

—पापा, स्वेटर पहली का ही खरीद लेना। नकी के बेटे ने इस बार भी उन्हे ढाढस बधाया था। आखिर वह था तो उसी बाबू का बेटा जिसकी जरूरत तो द्रौपदी की चीर हो और तनख्वा दो जून रोटी तक का न हो। भाई की बात सुन सूट की बात कहती बिटिया भी बाहर चली गयी थी। शायद उसके लिए भी अब अधिक देख पाना असह्य हो आया था, जबकि अब नकीराम की निगाह बाहर उधर टिकी थी जिधर मा फर्श पर लेटी थी। और दमयती थी कि उन्हें ऐसा लगा जैसे भगवान नहा

का नहीं उनकी अपनी परीक्षा न रह हैं। उनका नाम राजा नल की उस दमयनी पर जो था। नल की दमयती सामान कम हान पर भी छत्तीस पदार्थ तैयार कर सकती थी। इसलिए वह बाहर रुक गयी जैसे अनजान म वह पति का यह सवंत द गयी हो, जिस आदमी क पास पस नहीं हान उसके मा-बाप, भाइ-बहन दास्त रिश्तदार कोइ भी अपन नहीं होन। यही वजह थी कि पत्नी क उस बार क बाहर जान क कारण नकी और भी घबरा आय। अब ता उन्ह एसा लगन लगा, जस और ता और अब उनक अपन ही हाथ-पाव तक उनक अपन नहीं रह

हालाकि तब दमयती एमा मकसद स बाहर नहीं निकली थी। वह ता उस मूस के कारण गयी थी जिसक बल पर उन्हाने चारपाइया म बचे पसा स ही स्कूली स्वेटर एक सूट-रजाइया तथा गद्दा की ही माग पूरी नहीं की वरन तीन किलो और रुई खरीदत हुए घुटना मे थोडी फटी अपनी धाता तक की एम क्षति पूर्ति कर दी जस कि नकीराम का इमरजेंसी लान न हाकर धरती म आय दिन लगन वाली इमरजेंसिया से कम न हा। क्याकि सयागवश उन्ह सरकार द्वारा गरीबा के लिए मुहैया वह कद्राली कपडा मिल गया जा तनखा ज्याद हाने के कारण उनके पति का तो मिलता नही था। मिलता था उनका—जा बधी आमद न हान क कारण गजेटेड अफसरा क सर्टिफिकेट के सहार दूकानदारी तक करत हुए आज के गरीब थे। यह अलग बात थी कि इतना करने पर भी नकी की एक और चूक के कारण दमयती का इतना किया-कराया भी उस समय धरा का धरा रह गया जब रजाइया लकर लौटत ही बच्चा स उन्हे पता चला— महमूद दूसरी चारपाई क बुनन के समय स लेकर अब तक कई बार चारपाइया की अदवायनी उन छ रस्सिया की माग कर चुका है जिन्ह खरीदन का अब पस बचे नहीं थे। हालाकि उन क्षणा की हकीकत यह थी कि पति-पत्नी दोना सब अर्से बाद आतरिक खुशी के बीच जहा घरेलू बातें कर रह थे वही यह सोचे थे—अब घर पहुचत ही बेटे का नया स्वेटर पहन देखेंगे बिटिया सूट सिल रही हागी। यही कारण था कि बच्चो की बात सुन ता व दोना हक्के-बक्के स एक-दूसरे का मुह

ताकत रह गय। फिर कोइ और उपाय न सोच दमयती कपडे सुखान को टगी रस्सिया बरामद म डालन लगी। नवीं थे कि छत पर जा महमूद म बोल—'अर अर, इस आखिरी चारपाइ क बुनने तक अभी रस्सिया खरीदकर लाता हू। मगर मामन पाक म गम बैठे कि कब ऊबकर महमूद बमाखिया क सहार दुकान को लौट और कब वे घर लौटें, क्योकि अधेरा क्षण क्षण गाढा होता चला जा रहा था

□□